सरस्वती-सिरीज़ नं० ४२

Vanshanukram vigyan

वंशानुक्रम विज्ञान

Shachendra nath sanyal

शचीन्द्रनाथ सान्याल

Indian Press, prayag.

प्रकाशक
इंडियन प्रेस लिमिटेड
प्रयाग

सरस्वती-सिरीज़

स्थायी परामर्शदाता—डा० भगवानदास, पण्डित अमरनाथ झा, भाई परमानंद, डा० प्राणनाथ विद्यालङ्कार, श्री सत्यदेव विद्यालङ्कार, प० द्वारिकाप्रसाद मिश्र, संत निहालसिंह, पं० लक्ष्मणनारायण गर्दे, बाबू संपूर्णानन्द, श्री बाबूराव विष्णुपराड़कर, पण्डित केदारनाथ भट्ट, ब्योहार राजेन्द्रसिंह, श्री पदुमलाल पुन्नालाल बख़्शी, श्री जैनेन्द्र कुमार, बाबू वृन्दावनलाल वर्मा, सेठ गोविन्ददास, पण्डित क्षेत्रेश चटर्जी, डा० ईश्वरीप्रसाद, डा० रमाशंकर त्रिपाठी, डा० परमात्माशरण, डा० बेनीप्रसाद, डा० रामप्रसाद त्रिपाठी, पण्डित रामनारायण मिश्र, श्री संतराम, पण्डित रामचन्द्र शर्मा, श्री महेशप्रसाद मौलवी फ़ाजिल, श्री रायकृष्णदास, बाबू गोपालराम गहमरी, श्री उपेन्द्रनाथ "अश्क", डा० ताराचंद, श्री चन्द्रगुप्त विद्यालङ्कार, डा० गोरखप्रसाद, डा० सत्यप्रकाश, श्री अनुकूलचन्द्र मुकर्जी, रायसाहब पण्डित श्रीनारायण चतुर्वेदी, रायबहादुर बाबू श्यामसुन्दरदास, पण्डित सुमित्रानन्दन पंत, प० सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला', प० नन्ददुलारे वाजपेयी, पं० हजारीप्रसाद द्विवेदी, पण्डित मोहनलाल महतो, श्रीमती महादेवी वर्मा, पण्डित अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध', डा० पीताम्बरदत्त बड़थ्वाल, डा० धीरेन्द्र वर्मा, बाबू रामचन्द्र टंडन, पण्डित केशवप्रसाद मिश्र, बाबू कालिदास कपूर, इत्यादि, इत्यादि।

विचारधारा

वंशानुक्रम विज्ञान

सन्तान और प्रजनन-विज्ञान के सबंध में कुछ महत्त्वपूर्ण प्रश्नों के वैज्ञानिक उत्तर

शचीन्द्रनाथ सान्याल

Printed and published by K. Mitra at The Indian Press, Ltd., Allahabad.

पहला परिच्छेद

वंशानुक्रम-विज्ञान क्या है ?

इस संसार में अनादि काल से आज तक ऐसा कभी नहीं देखने में आया कि कोई एक व्यक्ति देखने में किसी दूसरे व्यक्ति के साथ पूर्णतया समान हो। और सम्भव है, अनन्त काल तक ऐसा ही होता रहे। इसका क्या कारण है ? किन्तु सभी ने यह देखा होगा कि एक ही माता-पिता की सन्तान आपस में देखने में कुछ अवश्य मिलती-जुलती हैं। माता-पिता और सन्तानों में भी कुछ सादृश्य रहता है। इसी प्रकार एक ही माता-पिता के पुत्रों और पुत्रियों में कुछ समानता रहते हुए भी उनमें विषमता भी कम नहीं रहता। सब भाई-बहन बिलकुल एक से कब होते हैं ? सन्तानें भी माता-पिता के सदृश तो होती हैं, किन्तु बिलकुल एक सी नहीं होतीं। जिस विज्ञान से माता-पिता और सन्तान-सन्ततियों में सादृश्य और विषमता के कारण का अनुसन्धान किया जाता है उस विज्ञान को 'वंशानुक्रम-विज्ञान' कहते हैं। हम अपने माता-पिता के गुण-अवगुणों के उत्तराधिकारी होते हैं अथवा नहीं, और यदि होते हैं तो कहाँ तक होते हैं, और कैसे पूर्वजों के गुण वंशजों में, उनके जन्म के समय संक्रमित अर्थात् उत्पन्न होते हैं, एवं जिन गुणों को लेकर मनुष्य जन्म लेता है उनके आधार पर जाति की उन्नति-अवनति

कैसे हुआ करती है, इन सब बातों के कोई नियम हैं अथवा नहीं? जीव का जन्म कैसे हुआ करता है? जन्म के पूर्व हम यह जान सकते हैं अथवा नहीं कि लड़का पैदा होगा अथवा लड़की? इसके भी कुछ नियम हैं अथवा नहीं? हम अपने इच्छानुसार पुत्र अथवा कन्या को जन्म दे सकते हैं अथवा नहीं? यदि पिता का रङ्ग साँवला और माता का गोरा हो, तो उनकी सन्तान के रङ्ग कैसे होंगे? शिशु किस माता-पिता से उत्पन्न हुआ है, इसकी क्या पहचान है? किस रोग को हम पूर्वजों से प्राप्त करते हैं और किसको नहीं? सिफलिस (गर्मी) की बीमारी हम पूर्वजों से प्राप्त करते हैं। पागलपन अथवा बहरापन किन रीतियों से वंशजों में उत्पन्न होते हैं? पुरुष के वीर्य में और स्त्री के शोणित में क्या-क्या है? लड़की से लड़का और लड़के से लड़की बन सकती है अथवा नहीं? जैसे बग़ीचे का माली पौधों से बीज संग्रह करता है और फिर अपने इच्छानुसार उन बीजों से फिर पौधे उत्पन्न करता है, वैसे ही मनुष्यों का वीर्य भी संग्रह करके रक्खा जा सकता है, अथवा नहीं? पुरुष और स्त्री का संयोग हुए बिना भी यन्त्रों की सहायता से सुरक्षित वीर्य द्वारा अभीप्सित सन्तान उत्पन्न की जा सकती हैं, अथवा नहीं? सन्तान-उत्पादन की शक्ति न रहने का क्या अर्थ है? अस्त्रोपचार अर्थात् नश्तर द्वारा सन्तान-उत्पादन की शक्ति नष्ट की जा सकती है, अथवा नहीं? निकट सम्बन्धियों में विवाह का सम्बन्ध होने से क्या हानि और लाभ हो सकता है? एक ही व्यक्ति का आधा अङ्ग पुरुष का और आधा नारी का हो सकता है, अथवा नहीं? इत्यादि का ज्ञान वंशानुक्रम-विज्ञान से प्राप्त हो सकता है। एक विषय का ज्ञान प्राप्त करते समय दूसरे विषय के ज्ञान के साथ परिचित हो जाना आवश्यक हो जाता है। इस प्रकार एक विज्ञान से दूसरे विज्ञान की उत्पत्ति होती रहती है। वंशपरम्परा में गुण-

अवगुण कैसे संक्रमित होते हैं, इसका पता जिस विज्ञान से चलता है उसे 'वंशानुक्रम-विज्ञान' कहते हैं। इस विज्ञान के सम्बन्ध में खोज करते-करते अति अद्भुत और विस्मयकर बातों का पता चला है। इस छोटी सी पुस्तक में उन सब आश्चर्यजनक बातों का परिचय देने की चेष्टा की जायगी। वंशानुक्रम-विज्ञान की आज अद्भुत उन्नति हुई है, किन्तु जन-साधारण को इस विषय में कुछ भी ज्ञान प्राप्त नहीं है।

वंशानुक्रम-विज्ञान का प्रयोजन और उसकी उत्पत्ति—विज्ञान के आविष्कार के साथ सामाजिक प्रश्नों का अत्यन्त घनिष्ठ सम्बन्ध है, किन्तु किस ज्ञान से समाज का कितना कल्याण होगा, अथवा कुछ भी कल्याण होगा या नहीं, इसको समझ लेना सब समय सहज बात नहीं है। ऐसी बहुत सी सूक्ष्म वैज्ञानिक बातों का आविष्कार हुआ है, जिनके साथ सामाजिक अथवा व्यावहारिक जीवन का कोई सम्बन्ध पहले पहल नहीं जान पड़ा था। परन्तु समय बीतने पर देखा गया कि यदि विज्ञान की उक्त सूक्ष्म बातों का आविष्कार न हुआ होता, तो वर्तमान समय की अद्भुत व्यावहारिक विज्ञान की बातें भी हमें देखने को न मिलतीं। यदि सामाजिक लाभालाभ को परवा न करके, केवल विशुद्ध ज्ञानान्वेषण की प्रेरणा से वैज्ञानिकगण विज्ञान की खोज न करते, तो आज हमें रेडियो, वायरलेस, सिनेमा आदि से परिचित होने का सौभाग्य प्राप्त न हुआ होता। ईथर नाम की किसी वस्तु का यथार्थ में अस्तित्व है अथवा नहीं, इस बात की खोज करते समय अत्यन्त विस्तृत आकाश के सम्बन्ध में भी कितनी ही नवीन, विस्मयकर और रहस्यमय बातों के आविष्कार हुए हैं। इन्हीं आविष्कारों के परिणाम में धीरे-धीरे रेडियो और वायरलेस के अद्भुत और विस्मयकर व्यापार हमारे सामने आये हैं। इस प्रकार जब केवल शुद्ध ज्ञान के लिए ही ज्ञानान्वेषण किया जाता है तब उसके परि-

णाम में आगे चलकर समाज का भी कल्याण हुआ करता है। इस कारण विशुद्ध ज्ञान के साथ व्यावहारिक ज्ञान का नित्य और घनिष्ठ सम्बन्ध है।

यद्यपि वंशानुक्रम-विज्ञान के साथ सामाजिक और वंशगत उन्नति-अवनति का अत्यन्त घनिष्ठ सम्बन्ध है, तथापि दूसरे अनेक वैज्ञानिक तत्त्वों की तरह, वंशानुक्रम-विज्ञान के आलोचनादि कार्य व्यावहारिक प्रयोजन की प्रेरणा से प्रारंभ नहीं हुए थे। जीव-विज्ञान के सम्बन्ध में अनुसंधान और गवेषणा करते समय ऐसे बहुत से तथ्यों का पता लगा, जिनके परिणाम में क्रमशः जीव-विज्ञान से स्वतन्त्र, किन्तु उसी की शाखा के रूप में, वंशानुक्रम-विज्ञान की उत्पत्ति हुई। आजकल वंशानुक्रम-विज्ञान की गिनती एक स्वतन्त्र विज्ञान के रूप में होती है।

वंशानुक्रम के सम्बन्ध में एक साधारण सी धारणा मनुष्यों के मन में हज़ारों वर्षों से चली आ रही है। संसार की अनेक असभ्य जातियों से लेकर बड़ी-बड़ी प्राचीन सभ्य जातियों में भी, वंशानुक्रम के सम्बन्ध में, नाना प्रकार के व्यावहारिक ज्ञान प्रचलित हैं। आधुनिक समय के बड़े-बड़े पण्डितों ने नाना प्रकार की असभ्य और बर्बर जातियों की सामाजिक रीति-नीति के विषय में बहुत से अनुसन्धान किये हैं। ऐसा करते समय उन जातियों के संस्कारादिकों के साथ परिचित होकर वे विस्मित हो गये हैं। उन जातियों में ऐसी भी रीति-नीतियों का प्रचलन है, जो अनेक अंशों में आधुनिक विज्ञान से अनुमोदित समझी जा सकती हैं।*

---

* देखिए :—Man and His Superstitions, P. 246 by Prof. Carveth Read of the London University—second edition, 1925.

ईसा के जन्म के छः सौ वर्ष पूर्व ग्रीक कवि थियाग्निस् ने यह कहकर आक्षेप किया था कि मनुष्य घोड़ों, गदहों और भेड़ों के सम्बन्ध में तो अच्छे वंश की खोज इस समझ से करता है कि 'अच्छे से अच्छे की ही उत्पत्ति होना' स्वाभाविक है, किन्तु एक अच्छे वंश का पिता अर्थ के लोभ में, कैसे अनायास ही, अपने पुत्र का विवाह एक बुरे वंश की बुरी लड़की के साथ कर देता है। स्पार्टा जाति के धर्मशास्त्र के प्रणेता लाइसर्गस् ने भी दूसरी जातियों की रीति-नीति को देखकर यह कहा था कि यह बड़े आश्चर्य की बात है कि अपनी गायों, भैंसों के बारे में तो दूसरी जातियाँ उनकी नस्ल पर प्रखर दृष्टि रखती हैं, परन्तु अपनी प्रजा की उन्नति के लिए, मनुष्य-वंश के प्रति उनका कुछ भी ध्यान नहीं रहता। लाइसर्गस् की प्रेरणा से स्पार्टा में विवाह के सम्बन्ध में बड़े कड़े नियम बनाये गये थे। उक्त नियमों का पालन कहाँ तक हुआ था, कहा नहीं जा सकता। विश्व-विख्यात ग्रीक दार्शनिक प्लेटो ने भी वंश गतगुण-दोषों के प्रति ध्यान रखते हुए, अपनी आदर्श समाज-संगठन की कल्पना में, विवाह के सम्बन्ध में विशेष नियमों का उल्लेख किया है। इसके दो हज़ार वर्ष पश्चात्, कैम्पानेला नामक एक प्रसिद्ध विद्वान् ने एक दूसरे आदर्श समाज के संगठन की कल्पना की थी। उसमें उन्होंने वंशानुक्रम पर ध्यान रखते हुए, सन्तान और समाज की मङ्गलकामना से, मनुष्यों की विवाह-पद्धति को नियन्त्रित करने के लिए कहा है।* भारतवर्ष में वंशानुक्रम के सम्बन्ध में बहुत ही स्पष्ट धारणाएँ थीं, और उन्हीं के आधार पर भारतीय वर्ण-व्यवस्था की प्रतिष्ठा हुई था। इस वर्ण-व्यवस्था के पक्ष में पाश्चात्य-समाज के बड़े से बड़े

---

* देखिए :—Engenics by A. M. Carr—Saunders P. 22—23.

पण्डित, दार्शनिक और वैज्ञानिकगण, जैसे कइजरलिंग, नीट्शे, हाल्डेन आदि ने अति स्पष्ट शब्दों में अपनी सम्मति दी है।*

मनुष्य, संसार के सब प्रकार के ज्ञानार्जन का अभिलाषी है, किन्तु न जाने किस मोह के फेर में पड़कर वह अपने विषय में अधिक जानने के लिए विशेष इच्छुक नहीं है। इस कारण हम देखते हैं कि पदार्थ-विज्ञान की आज जितनी उन्नति हुई है, उतनी उन्नति जीव-विज्ञान अथवा मानस-विज्ञान की नहीं हुई।† मनुष्य होने पर भी हम मानव-तत्त्व और आत्मज्ञान के सम्बन्ध में कितने उदासीन हैं। ज्योतिष्क-मण्डल में क्या हो रहा है, यह जानने के लिए हम परम उत्सुक हैं; किन्तु मानव-समाज में, वंशानुक्रम के पर्याप्त ज्ञान के न रहने के कारण विवाहपद्धति, केवल व्यक्तिगत रुचि-अभिरुचि के अनुसार नियन्त्रित हो रही है और इस कारण समाज की कैसी दुर्गति हो रही है, इसका हमें पता भी नहीं है। गाय-बैलों, घोड़ों और कुत्तों के वंशों के बारे में तो पाश्चात्य-समाज न जाने कितना ध्यान रखता है; किन्तु मानव-परिवार के सम्बन्ध में, ग्रीस सभ्यता के अभ्युदय के समय से लेकर आज तक, वह समाज नितान्त उदासीन रहा है। वंशानुक्रम-विज्ञान की आज बहुत उन्नति हुई है; किन्तु वह केवल पुस्तकों में ही सीमित है, समाज के मङ्गल के लिए उसका प्रयोग आज भी नहीं के बराबर हुआ है।

---

* देखिए :—The World in the Making, Keyserling; The will to Power, Nietzsche; The Inequality of man by J. B. S. Haldane आदि आदि।

† "We have gained the mastery of almost everything which exists on the surface of the earth, excepting ourselves"—Alexis Carell in man the Unknown—P. 2. 1st. edn. 1925.

अनेक पण्डितों की यह राय है कि प्रतिभावान् पुरुषों के अभाव से एथेन्स और स्पार्टा का पतन हुआ था। अव्यवस्थित विवाह-पद्धति के कारण रोम के पारिवारिक जीवन में व्यभिचार का स्रोत प्रवाहित हुआ था, जिससे उसका भी पतन हुआ। विवाह-पद्धति के अनियन्त्रित होने से पारिवारिक जीवन में व्यभिचार का विष प्रवेश करता है, और तब व्यक्तित्व के विकास का उपयुक्त अवसर नहीं रह जाता। इस प्रकार प्रतिभा के विनाश से समाज में उपयुक्त नेताओं का अभाव होने लगता है, और समाज का सर्वनाश अवश्यम्भावी हो जाता है। इस कारण वंशानुक्रम-विज्ञान के अनुसार विवाह-पद्धति का नियन्त्रित होना अत्यावश्यक है।

वंशानुक्रम के साथ शिक्षा का भी अत्यन्त घनिष्ठ सम्बन्ध है। इस विषय की आजकल पाश्चात्य देशों में बहुत ही गम्भीर रूप से चर्चा चल रही है। ईसाई समाज में यह भ्रमात्मक धारणा फैली हुई है कि शिशु सर्वथा संस्कारशून्य होकर जन्म ग्रहण करता है। वंशानुक्रम-विज्ञान में इसके विपरीत बहुत से प्रमाण प्राप्त होते हैं। कहा जाता है, हज़रत मोहम्मद साहब से किसी ने पूछा था कि किस समय से बालक की शिक्षा प्रारम्भ होनी उचित है। इसके उत्तर में उन्होंने कहा था—'उसके जन्म के कम से कम एक सौ वर्ष पूर्व से।' उस महापुरुष ने अपने उक्त वाक्य द्वारा वंशानुक्रम की बात को ही सूचित किया था। भारतवासियों की धारणा में शिशु संस्कारयुक्त होकर ही जन्म लेता है। उन संस्कारों के आधार पर ही शिशु का व्यक्तित्व बनता है। इस तत्त्व से परिचित न होने से यथार्थ शिक्षा-व्यवस्था का निर्माण संभव नहीं है। दुर्जन व्यक्ति, शिक्षा प्राप्त कर लेने पर समाज की और भी भयङ्कर क्षति कर सकता है। विद्या से अलंकृत दुष्टजन को भी हमें त्यागना उचित है, जैसे मणि से भूषित होने पर भी सर्प हमारे लिए अत्यन्त भयङ्कर होता है। इस कारण विद्या-

लयों की व्यवस्था में छात्रों के गुण-अवगुणों के प्रति दृष्टि रखना हमारे लिए परम कर्तव्य हो जाता है। इसी कारण सब प्रकार के विद्यार्जन करने का सबको समान अधिकार नहीं है, सब ब्राह्मणों को भी नहीं। भारतवर्ष का यही प्राचीन निर्देश है। अर्थात् सब प्रकार के कार्यों के लिए अधिकारी का होना आवश्यक है। यही अधिकार-भेद का रहस्य भारतीय सभ्यता की एक विशिष्टता है। जन्म ही हमें अधिकार प्रदान करता है।

विवाह-पद्धति के साथ जन्म का अविच्छेद्य सम्बन्ध है। भारतीय वर्णव्यवस्था में इसी लिए विवाह-पद्धति पर नियन्त्रण का विशेष रूप से निर्देश है। इसी कारण प्रसिद्ध जर्मन दार्शनिक श्री कैज़रलिंग ने कहा है कि संसार में फिर प्राचीन भारतीय वर्ण-व्यवस्था का आदर्श बल प्राप्त करेगा।

यह बात भी सत्य है कि जन्म से प्राप्त अधिकारों को विकसित करने के लिए उपयुक्त शिक्षा और दीक्षा एवं अनुकूल वातावरण की परम आवश्यकता है। किन्तु जन्म से यदि हम गुणों को प्राप्त नहीं करते हैं तो पारिवारिक वातावरण का प्रभाव हमारे ऊपर अधिक नहीं पड़ सकता। यदि स्वभाव से ही हमारी पृथ्वी पदार्थों को अपनी ओर न खींचती होती, तो एक साधारण हथौड़ी का चलाना भी कठिन हो जाता। आजकल वैज्ञानिकों में इस प्रश्न पर तुमुल झगड़ा चल रहा है कि हमारे जीवन पर पारिपार्श्विक वातावरण का अधिक प्रभाव है अथवा जन्मगत गुणों का। किन्तु बड़े से बड़े वैज्ञानिक भी इस बात को स्वीकार करते हैं कि वंश-परम्परा से हम बहुत कुछ गुण-अवगुणों को प्राप्त करते हैं और पारिपार्श्विक वातावरण की अपेक्षा उन गुणों का जीवन पर अधिक प्रभाव पड़ता है।* इसके विपरीत दूसरे भी वैज्ञानिक हैं,

* देखिए ;—बँगला मासिक पत्र—साहित्य, वैशाख, बँगला सन् १३१९—श्री शशधर राय का वंशानुक्रम पर एक लेख।

जो यह समझते हैं कि वंशानुक्रम की अपेक्षा जीव पर पारिपार्श्विक वातावरण का अधिक प्रभाव पड़ता है।

प्राच्य देशों में भी वंश-मर्यादा के प्रति यथार्थ श्रद्धा दर्शाई गई है। इँगलैंड के प्रसिद्ध कवि श्री डब्ल्यू० बी० ईट्स ने कवीन्द्र रवीन्द्रनाथ की गीताञ्जलि की भूमिका में एक सुन्दर दृष्टान्त का उल्लेख किया है;—"प्राच्य देशों में आप लोग यथार्थ में ही वंश-मर्यादा को अक्षुण्ण रखना जानते हैं। उस दिन मुझे एक म्युज़ियम के क्यूरेटर (अध्यक्ष) ने एक कृष्णाङ्ग व्यक्ति को दिखलाकर यह कहा था कि वह व्यक्ति, जो चीन देश की प्रदर्शनीय वस्तुओं को सजाकर रख रहा है, मिकैडो के एक प्रिय कलाकार वंश का चौदहवाँ व्यक्ति, है। उक्त परिवार वंश-परम्परा से उसी कार्य में नियुक्त है।"

प्रसिद्ध जीव-वैज्ञानिक श्रीयुत जे० आर्थर टाम्सन् महोदय ने कहा है कि वंशानुक्रम-विज्ञान से सम्बन्ध रखनेवाली समस्याएँ अन्य समस्त वैज्ञानिक समस्याओं में मनुष्य-समाज के लिए सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण हैं।*

सामाजिक प्रयोजन के अतिरिक्त विशुद्ध ज्ञान की दृष्टि से भी, हमें वंशानुक्रम-विज्ञान से बहुत ही चित्ताकर्षक बातों का पता चलेगा। जैसे कृत्रिम उपायों से सब्ज़ी और फूलों तथा फलों के पौधों का अद्भुत विकास किया जा रहा है, वैसे ही प्राणियों में भी अपने इच्छानुसार नवीन प्रकार के जीवों की उत्पत्ति की चेष्टा

Heredity in the Light of Recent Research by L. Doncaster pp. 49, 50, 116; Darwin & Modern p. 101; अति आधुनिक युग के भी बड़े-बड़े वैज्ञानिकों का मत इसके पक्ष में है। इसके विरुद्ध भी कुछ अन्य बड़े-बड़े वैज्ञानिक अपनी राय देते हैं; इस विषय पर आगे चलकर विस्तृत रूप से आलोचना की जायगी।

* Heredity by J. A. Thomson P. I.

की जा रही है। चूहे आदि पर इसकी परीक्षा प्रारम्भ हो गई है और इस विषय में बहुत कुछ सफलता भी प्राप्त हुई है। वैज्ञानिकों का कथन है कि भविष्य में हम पेड़-पौधों की तरह मनुष्यों को भी हम अपनी इच्छा के अनुसार जन्म दे सकेंगे। यदि विशुद्ध ज्ञान की दृष्टि से विज्ञान की उन्नति नहीं होगी, तो विज्ञान से हमें सामाजिक लाभ भी अधिक न हो सकेगा।

दूसरा परिच्छेद

डारविन, गैल्टन और मेन्डेल के आविष्कार

डारविन—बीसवीं सदी के पहले तक विज्ञान के आधार पर वंशानुक्रम का ज्ञान प्रतिष्ठित नहीं हो पाया था। इस बात को तो सभी जानते थे कि सन्तान पिता-माता के सदृश होती हैं, और एक ही पिता-माता की सन्तान आपस में देखने में एक दूसरी से बहुत कुछ मिलती-जुलती हैं। मनुष्य इस बात को सैकड़ों वर्षों से जानता था कि कटहल के पेड़ से आम नहीं फलता और केले का पेड़ लगाने से उससे लीची नहीं मिल सकती। मनुष्यों के बारे में भी ऐसा ही नियम लागू है, इस धारणा का भी मनुष्य अनादि काल से पोषण करता चला आया है। "मा को पूत पिता को घोड़ा, बहुत नहीं तो थोड़ा थोड़ा" यह कहावत उक्त धारणा की पुष्टि करती है। किन्तु वैज्ञानिक रीति से इसकी आलोचना अभी पिछले दिनों से ही प्रारम्भ हुई है।

विज्ञान के इतिहास में एफ० जे० गॉल (१७५८—१८२८) नामक एक डाक्टर ने, पहले तो वियना और बाद को पेरिस में, अपने परीक्षागारों में स्नायु के सम्बन्ध में अनुसन्धान करते समय,

वंशानुक्रम के बारे में भी बहुत से तथ्यों का आविष्कार किया था। गॉल के वंशानुक्रम-सम्बन्धी आविष्कार के कारण उन पर ईसाई समाज के पादरी अत्यन्त असंतुष्ट हो गये थे। इसका कारण यह था कि ईसाइयों के धारणानुसार जन्म के समय शिशु संस्कारशून्य होकर ही जन्म लेता है, और वंशानुक्रम-विज्ञान के अनुसार वह संस्कार-युक्त होकर जन्म ग्रहण करता है।

आधुनिक विकासवाद अथवा विवर्त्तनवाद की भी मूल धारणाएँ हिन्दुओं में बहुत समय से प्रचलित हैं; किन्तु पाश्चात्य समाज में ही उसका वैज्ञानिक रूप प्रकट हुआ है। वंशानुक्रम-विज्ञान भी पहले-पहल विकासवाद की ही शाखा के रूप में दिखाई दिया था। सैकड़ों पशुपालक और बाग़वानों ने इस बात को समझ लिया था कि बलिष्ठ साँड़ के औरस से उत्कृष्ट गाय का जन्म होता है, और फूल तथा फल के पौधों से भी, नई-नई शाखाओं के निकलने से, नये प्रकार के फलों और फूलों के जन्म देनेवाले नवीन पौधों का आविर्भाव होता है।*

वैज्ञानिक विकासवाद के आविर्भाव के पूर्व ही दार्शनिक और चिन्तनशील लेखकों ने सर्वप्रथम विकासवाद के सिद्धान्त का प्रचार किया था, किन्तु सबसे पहले लामार्क और उसके बाद चार्ल्स डारविन, वालेस और हरबर्ट स्पेन्सर ने, वर्त्तमान युग में वैज्ञानिक विकासवाद को जन्म दिया। इनमें से लामार्क की खोज और डार्विन के "ऑरिजिन आफ़् स्पीसीज़" के खोजपूर्ण तथ्यों के आधार पर वंशानुक्रम-विज्ञान का वैज्ञानिक आधार प्रतिष्ठित हुआ है। वंशानुक्रम को धारणा को छोड़कर वैज्ञानिक विकासवाद टिक नहीं सकता। सबसे पहले लामार्क ने ही वंशानुक्रम के आधार

---

* देखिए :—History of Science. by W. C. D. Dampier-Whetham Pp. 274, 291

पर विकासवाद के एक युक्तिसङ्गत सिद्धान्त का निर्माण किया था। लामार्क का जीवनकाल ई० सन् १७४४ से १८२६ है और डारविन का जीवनकाल १८०६ से १८८२ है। डारविन के पहले ही लामार्क ने विकासवाद के सम्बन्ध में गवेषणा प्रारम्भ कर दी थी। उन्होंने १८३० में अपनी गवेषणाओं का परिणाम प्रकाशित करा दिया था। डारविन ने इसके बाद ही विकासवाद के सम्बन्ध में अपनी गवेषणा प्रारम्भ की थी। उस गवेषणा के परिणाम में एक नवीन एवं अतिव्यापक वैज्ञानिक सिद्धान्त का उद्भव हुआ था। इस सिद्धान्त का अँगरेज़ी नाम है 'थियरी आफ़् इवोल्यूशन', अर्थात् विकासवाद। इस विकासवाद ने वैज्ञानिक क्षेत्र में जैसा युगान्तर उपस्थित किया था, उसका वैसा ही अद्भुत प्रभाव सामाजिक और धार्मिक क्षेत्रों में भी देखा गया था।

विकासवाद के इन मूल सिद्धान्तों को लेकर आज भी नाना प्रकार की गवेषणाएँ हो रही हैं। नूतन का उद्भव कैसे होता है, इसकी वैज्ञानिक मीमांसा आज भी नहीं हो पाई है। सोवियट रूस में ऐसे भी एक वैज्ञानिक का आविर्भाव हुआ है, जिसने डारविन के विकासवाद को स्वीकार नहीं किया है। इस पुस्तक में विकासवाद के सिद्धान्त के सम्बन्ध में अधिक आलोचना न करते हुए हम केवल इतना ही कहना चाहते हैं कि विकासवाद के सिलसिले में ही वंशानुक्रम-विज्ञान की उत्पत्ति हुई। नूतन का आविर्भाव कैसे होता है, इस प्रश्न ने एक ओर जैसे वैज्ञानिकों के मन को चञ्चल किया है, वैसे ही जीव-राज्य में विभेदों की भी कैसे सृष्टि हुई और उनका स्वरूप क्या है, इसके सम्बन्ध में आज तक वैज्ञानिकों की खोज समाप्त नहीं हुई है। नवीन और विभेदों की सृष्टि के प्रश्नों के साथ ही वंशानुक्रम-विज्ञान का सम्बन्ध है।

वंशानुक्रम-विज्ञान के सम्बन्ध में इतने वैज्ञानिक आविष्कार हो चुके हैं कि उन्हें विधिपूर्वक क्रम के अनुसार एकत्र करना

और उनके तात्पर्यों को ठीक-ठीक समझ लेना आज अत्यन्त कठिन बात हो गई है। हमें यह भी स्मरण रखना उचित है कि वैज्ञानिक क्षेत्र में किसी सिद्धान्त को हम अन्तिम निर्णय के रूप में नहीं ग्रहण कर सकते। वंशानुक्रम-विज्ञान के सम्बन्ध में भी यही बात कही जा सकती है। तथापि इस विज्ञान की इतनी उन्नति हुई है कि यदि सामाजिक क्षेत्र में इसका उपयुक्त प्रयोग हो तो समाज का प्रभूत कल्याण होगा।

सर फ़्रैन्सिस् गैल्टन (१८२२-१९११)—डारविन के पश्चात् उनके चचेरे भाई गैल्टन महोदय ने ही आधुनिक वंशानुक्रम-विज्ञान को जन्म दिया। डारविन के 'ऑरिजिन आफ़् स्पीसीज़' नामक ग्रन्थ में, प्राणियों के सम्बन्ध में जितनी वंशानुक्रम की बातें मिलीं, उन्हीं तथ्यों का प्रयोग गैल्टन ने मनुष्यों के सम्बन्ध में किया। विशेष-विशेष परीक्षाओं में छात्रों ने जैसे-जैसे नम्बर प्राप्त किये उनकी तुलना करके गैल्टन ने यह प्रमाणित किया कि जड़ पदार्थों की गति आदि, जैसे गणित शास्त्र के नियमाधीन रहती हैं, उसी प्रकार मनुष्यों की मानसिक शक्ति का विकास भी, गणितशास्त्र के नियमों से बँधा हुआ है। गैल्टन ने यह प्रमाणित कर दिखाया है कि अधिकांश मनुष्यों की मानसिक शक्ति की गिनती मध्यम श्रेणी में है। यदि इस मध्यम श्रेणी के एक व्यक्ति की मानसिक शक्ति के साथ उसी समाज के एक प्रतिभावान् व्यक्ति की मानसिक शक्ति की तुलना की जाय तो यह देखने में आता है कि साधारण व्यक्ति और प्रतिभावान् व्यक्ति के बीच मानसिक शक्ति का जितना व्यवधान है, और इनके बीच जैसे क्रमशः उच्च से उच्चतर शक्ति का विकास देखने में आता है उसी प्रकार, यह भी देखने में आता है कि उसी समाज के एक निकृष्टतम व्यक्ति की तुलना, एक मध्यम श्रेणी के व्यक्ति की मानसिक शक्ति के साथ करने पर, इन दोनों में भी ठीक पहले

ही जैसा व्यवधान है। इन दोनों श्रेणियों के बीच, मानसिक शक्ति का ह्रास भी ठीक पहले ही की तरह, धीरे धीरे मध्यम श्रेणी से निम्न श्रेणी में निम्न से निम्नतर होता जाता है। इस प्रकार श्रेणी-विभाजन के लिए गैल्टन ने प्रति दस लाख मनुष्यों के बीच से केवल ढाई सौ व्यक्तियों को छाँटकर उन्हें एक श्रेणी में डाल दिया था और उस श्रेणी के व्यक्ति का नाम 'एमिनेन्ट', अर्थात् 'शक्तिमान्' मानव रक्खा था। इस प्रकार दस लाख मनुष्यों के बीच से एक विशिष्ट व्यक्ति को छाँटकर उसका नाम 'इलस्ट्रियस' अर्थात् प्रतिभावान् मानव रक्खा था। इस प्रकार नामकरण के पश्चात् उन्होंने यह दिखाया है कि मूढ़-जड़ स्वभाव-विशिष्ट मनुष्य के साथ एक ओर साधारण मनुष्य का जितना अन्तर है, दूसरी ओर साधारण मनुष्य के साथ शक्तिमान् मनुष्य का भी ठीक उतना ही अन्तर है। प्रामाणिक पुस्तकों आदि की सहायता से प्रसिद्ध व्यक्तियों के जीवनचरित्रों को पढ़कर गैल्टन ने यह दिखाया है कि साधारण व्यक्तियों के निकट आत्मीय जनों में जितने शक्तिमान् व्यक्ति मिल सकते हैं उनकी अपेक्षा शक्तिमान् व्यक्तियों के आत्मीय जनों में बहुत अधिक प्रतिभावान् व्यक्ति मिलते हैं। उन्होंने यह भी दिखाया है कि एक साधारण श्रेणी के व्यक्ति के पुत्र की अपेक्षा एक शक्तिमान् व्यक्ति के पुत्र का प्रतिभावान् व्यक्ति होना पाँच सौ गुना अधिक सम्भव है। उन्होंने वंशानुक्रम के सम्बन्ध में तीन पुस्तकें लिखी हैं। उनके दृष्टान्त का अनुसरण करके दूसरे वैज्ञानिकों ने वंशानुक्रम के सम्बन्ध में बड़ी-बड़ी महत्त्वपूर्ण खोजें की हैं, और आज वंशानुक्रम-विज्ञान नाना रूप से पल्लवित होकर फल देने की अवस्था में आ पहुँचा है। गैल्टन के सब नियमों की आलोचना यहाँ सम्भव नहीं है। यहाँ पर उनके केवल दो नियमों का उल्लेख कर देना आवश्यक है। उनका एक नियम तो यह है कि सन्तान, अपने माता-पिता से, उनके आधे-आधे गुणों को प्राप्त करती है,

और अपने माता-पिता के माता-पिताओं से भी, वे उनके एक चौथाई गुण प्राप्त करती हैं। इसी भाँति वे उनके भी माता-पिताओं से, उनके आठवें हिस्से गुण को प्राप्त करती हैं। इसी प्रकार गैल्टन के मतानुसार एक व्यक्ति अपने समाज का अविच्छिन्न अङ्ग बना है। उनका दूसरा नियम यह है;—यदि किसी समाज को उच्च, मध्यम और निम्न श्रेणी के व्यक्तियों के हिसाब से विभाजित किया जाय, तो उच्च श्रेणी की सन्तान मध्यम श्रेणी के व्यक्ति के समीपवर्त्ती होकर जन्म लेती हैं, और निम्न श्रेणी के व्यक्तियों की सन्तान भी मध्यम श्रेणी की निकटवर्त्ती होकर जन्म लेती हैं। दृष्टान्त के तौर पर लम्बे पिता-माता की सन्तान, उनसे छोटे क़द की होंगी, किन्तु मध्यम श्रेणी से ऊँची होंगी। इसी प्रकार नाटे पिता-माता की सन्तान अपने पिता-माता से तो ऊँची होंगी, किन्तु मध्यम श्रेणी के व्यक्तियों से छोटी होंगी। जिस समाज में अनियमित विवाह-पद्धति का प्रचलन है, उस समाज में हा ये नियम अधिक लागू हैं।

ग्रेगर जोहन मेन्डेल—इस बात को सभी ने देखा होगा कि एक ही पिता-माता की सन्तान देखने में, अनेकांश में, अपने पिता-माता के सदृश ही होती हैं। किन्तु पिता-माता और उनकी सन्तानों में जैसे एक सादृश्य है, वैसे उनकी आकृति और प्रकृतियों में भिन्नता भी कम नहीं है। एक ही पिता-माता की प्रत्येक सन्तान देखने में ठीक एक सी नहीं होती है। पिता-माता और उनकी सन्तानों के बीच कुछ समानता और कुछ असमानता भी रहती है। कोई सन्तान आकृति और प्रकृति में हू-बहू पिता-माता के अनुरूप नहीं होती।

माता-पिता और सन्तानों में कितनी समता और असमता है एवं एक ही माता-पिता की सन्तानों में भी परस्पर कितना सादृश्य है और कितना नहीं, इन सबका अनुसन्धान करना ही वंशानुक्रम-

विज्ञान का लक्ष्य है। गैल्टन को गवेषणा के परिणाम में हमें इस बात का ज्ञान प्राप्त नहीं हुआ था कि वंश-परम्परा के क्रम से, सन्तान माता-पिता के गुणों और अवगुणों की अधिकारी कैसे बनती है। आस्ट्रिया के एक संन्यासी, ग्रेगर जोहन मेन्डेल (Gregor John Mendel १८२२-१८८४) महोदय ने इस विषय पर पौधों को लेकर बहुत परीक्षाएँ का थीं। उनकी ८ साल की परीक्षाओं के परिणाम में बहुत से वैज्ञानिक तथ्यों का आविष्कार हुआ है, और उन आविष्कारों के आधार पर वंशानुक्रम का ज्ञान यथार्थ विज्ञान के रूप में प्रतिष्ठित हो पाया है।

जिस समय डारविन अपनी खोज में लगे थे और जिस समय उन्होंने १८६५ में अपनी एक किताब प्रकाशित की थी, उसी समय मेन्डेल महोदय भी अपने आश्रम में पौधों के वंश के सम्बन्ध में परीक्षाएँ कर रहे थे। उन्होंने परीक्षाओं का फल एक स्थानीय वैज्ञानिक समिति के पत्र में प्रकाशित किया था, परन्तु क़रीब चालीस साल तक इनका पता संसार के दूसरे बड़े-बड़े वैज्ञानिकों को न था। सन् १९०० में ह्यूगो डी० व्राइज़, कारेन्स और शेरमैक ने मेन्डेल के आविष्कार को संसार के सम्मुख उपस्थित किया। विलियम वैटेशन आदि दूसरे वैज्ञानिकों की परीक्षाओं से मेन्डेल के आविष्कार की पुष्टि हुई।

मेन्डेल का आविष्कार—थोड़े शब्दों में मेन्डेल के आविष्कार का वर्णन इस प्रकार किया जा सकता है—मेन्डेल ने बड़े और छोटे मटर के पौधों को लेकर परीक्षा प्रारम्भ की। जब केवल एक प्रकार के मटर को अलग बोया गया तो उससे केवल एक ही प्रकार के मटर पैदा हुए। किन्तु जब दोनों प्रकार के मटर एक साथ लगाये गये, तो उनमें से केवल बड़े प्रकार के मटर के पौधे निकले, छोटे प्रकार के ग़ायब हो गये। परन्तु जब पुनः इस नये बड़े मटर को लगाया गया, तो देखा गया कि उनमें एक

चौथाई छोटे मटर निकल आये और तीन चौथाई बड़े प्रकार के मटर निकले। ये एक चौथाई छोटे मटर के पौधे अलग लगाये गये तो उनमें से सब छोटे ही मटर निकले, बड़ा मटर एक भी न निकला। उधर तीन चौथाई जो नये प्रकार के बड़े मटर निकले थे उन्हें अलग लगाया गया तो उनमें से फिर कुछ छोटे और कुछ बड़े मटर के पौधे निकले। इस प्रकार यह देखा गया कि सबसे पहलेवाले बड़े मटर के पौधे लगाने से उनमें से केवल बड़े के ही पौधे निकलते हैं और छोटेवाले से छोटे के; परन्तु इन दोनों प्रकार के पौधों में संयोग होने पर, पहली पीढ़ी में, एक प्रकार का पौधा ग़ायब हो जाता है। अब इस पहली पीढ़ी के बड़े मटर से छोटे बड़े दोनों प्रकार के पौधे निकलते हैं। किन्तु पहले प्रकार के बड़े मटर से केवल एक ही प्रकार के बड़े मटर निकले थे। इन विभिन्न प्रकार के पौधों की उत्पत्ति की संख्याएँ पृष्ठ २४ पर चित्र में समझाई गई हैं।

उस चित्र से पाठकों को पता चल जायगा कि मिश्रण होने के पश्चात्, पहली पीढ़ी में, छोटे मटर ग़ायब हो जाते हैं और केवल एक ही प्रकार के बड़े मटर उगते हैं। परन्तु इस पहली पीढ़ी के मटर के बीज में छोटे पौधे के बीज छिपे हुए हैं। इस छिपी हुई सत्ता को अँगरेज़ी में Recessive Character कहते हैं और उसके बड़ेपन को अँगरेज़ी में Dominant Character कहते हैं। हम हिन्दी में इन दोनों लक्षणों को क्रमशः "सुप्त" और "व्यक्त" लक्षण कह सकते हैं। पहली पीढ़ी के बड़े मटर में हम 'व्यक्त' लक्षण बड़ेपन और 'सुप्त' लक्षण छोटेपन को एकत्र पाते हैं। यह मिश्र वंश कहलायेगा। इस मिश्र वंश के पौधों के आपस के संयोग से, जो दूसरी पीढ़ी उत्पन्न होगी, उसमें एक चौथाई तो बड़े मटर निकलेंगे और एक चौथाई छोटे मटर। इन दोनों प्रकार के छोटे

बड़ा मटर × छोटा मटर

- बड़ा मटर
  - $\frac{१}{४}$ बड़ा — सब बड़े
  - $\frac{१}{४}$ बड़ा
    - $\frac{१}{४}$ ब० — सब बड़े
    - $\frac{१}{४}$ ब०
      - $\frac{१}{४}$ ब०
      - $\frac{१}{४}$ ब०
      - $\frac{१}{४}$ ब०
      - $\frac{१}{४}$ छो०
    - $\frac{१}{४}$ ब०
      - $\frac{१}{४}$ ब०
      - $\frac{१}{४}$ ब०
      - $\frac{१}{४}$ ब०
      - $\frac{१}{४}$ छो०
    - $\frac{१}{४}$ छो० — सब छोटे
  - $\frac{१}{४}$ बड़ा
    - $\frac{१}{४}$ ब० — सब बड़े
    - $\frac{१}{४}$ ब०
      - $\frac{१}{४}$ ब०
      - $\frac{१}{४}$ ब०
      - $\frac{१}{४}$ ब०
      - $\frac{१}{४}$ छो०
    - $\frac{१}{४}$ ब०
      - $\frac{१}{४}$ ब०
      - $\frac{१}{४}$ ब०
      - $\frac{१}{४}$ ब०
      - $\frac{१}{४}$ छो०
    - $\frac{१}{४}$ छो० — सब छोटे
  - $\frac{१}{४}$ छोटा — सब छोटे

और बड़े मटरों को यदि अलग-अलग बोया जाय तो इनमें से शुद्ध छोटे और बड़े प्रकार के मटर के पौधे हमेशा निकलते रहेंगे। इन दोनों वंशों को शुद्ध वंश कह सकते हैं। इस दूसरी पीढ़ी में एक चौथाई बड़े और एक चौथाई छोटे मटरों के वंशों को छोड़कर बाक़ी दो चौथाई अर्थात् आधे पौधे देखने में तो बड़े प्रकार के होंगे; परन्तु ये पौधे मिश्र वंश के होंगे और इनके आपस के संयोग से फिर एक चौथाई बड़े और एक चौथाई छोटे शुद्ध वंश के पौधे निकलेंगे। बाक़ी आधे पुनः मिश्र वंश के होंगे। इस नियम को मेन्डेल का नियम कहा जाता है। इसके अतिरिक्त दूसरे दृष्टान्त भी मिलते हैं;—जैसे एक ही जाति के सफ़ेद और लाल फूलों में संयोग होने से पहले गुलाबी फूल उत्पन्न होगा और इस मिश्र-गुलाबी फूल के आपस के संयोग से मेन्डेलियन नियमानुसार पुनः सफ़ेद, लाल और गुलाबी फूल उत्पन्न होते रहेंगे। एक तीसरा दृष्टान्त इस प्रकार है—काले और मुलायम लोमवाले गिनी पिग* से सफ़ेद और कड़े लोमवाले गिनी पिग का संयोग होने से, पहली पीढ़ी में, काले तथा कड़े बालवाले गिनी पिग उत्पन्न होते हैं और इन पहली पीढ़ीवालों में परस्पर संयोग होने से नौ काले तथा कड़े लोमवाले, तीन काले और नरम लोमवाले, तीन सफ़ेद और कड़े लोमवाले एवं एक सफ़ेद नरम लोमवाला गिनी पिग उत्पन्न होता है। इस दृष्टान्त में कुछ नवीन प्रकार के गिनी पिग उत्पन्न हुए; परन्तु ये देखने में ही नवीन हैं, यथार्थ में नहीं। इनमें केवल पहले के, अलग-अलग गुणों के, विभिन्न सम्मिश्रण मात्र हैं। वंश-वृद्धि के ये सब दृष्टान्त मेन्डेल के नियमानुसार ही होते हैं। इन दृष्टान्तों से हमें यह जान पड़ता है कि जीव के विभिन्न गुण अलग-अलग रूप से सन्तान में दिखाई पड़ते हैं। इन अलग अलग गुणों को अँगरेज़ी में 'मेन्डेलियन

* Guinea Pig=चूहा जातीय एक जन्तु।

फ़ैक्टर्स' कहते हैं। इन्हें हिन्दी में "गुण", "लक्षण" अथवा "उपकरण" कह सकते हैं। पौधों अथवा जीवों के ये "गुण" (factors) स्वतन्त्र रूप से क्रियाशील रहते हैं। सम्मिश्रण होने पर भी ये लुप्त न होकर वंश-परम्परा में क्रियाशील रहते हैं। वंशानुक्रम-विज्ञान में इस बात का अत्यन्त महत्त्व है। इन फ़ैक्टर्स (लक्षणों) के विभिन्न रूप से मिश्रित होने पर अलग-अलग जीवों की उत्पत्ति होती है। विभिन्न गुण-युक्त स्त्री और पुरुष के संयोग से उनके विभिन्न "फ़ैक्टर्स" के नाना प्रकार के सम्मिश्रण होते हैं। इन फ़ैक्टर्स की संख्या जितनी अधिक होगी, उनका सम्मिश्रण भी उतना ही जटिल होगा। इस जटिलता का एक उदाहरण यह है कि देखने में तो एक जीव गोरा है; किन्तु उसका यह गोरापन कई एक गुणों (Factors) के सम्मिश्रित होने का परिणाम है। इसी प्रकार एक दूसरे जीव का गोरापन दूसरे गुणों के मिश्रित होने से उत्पन्न हुआ है। जब ऐसे दो जीवों का संयोग होगा तब उनकी सन्तान गोरी नहीं भी हो सकती है। गोरेपन के अतिरिक्त दूसरे गुणों के सम्बन्ध में भी यही नियम लागू है। यह तत्त्व कितना महत्त्व रखता है, इसका पता एक दूसरे दृष्टान्त से चलेगा। एक प्रकार का गेहूँ है, जिसमें शीघ्र कीड़े नहीं लगते। एक दूसरे प्रकार के गेहूँ म भी वही गुण है परन्तु वह भिन्न 'फ़ैक्टर्स' के सम्मिश्रण से बना है। किन्तु इन दो प्रकार के गेहूँ के सम्मिश्रण से जितने प्रकार के गेहूँ उत्पन्न होते हैं उनमें से एक ऐसे प्रकार का भी गेहूँ होता है, जिसमें बहुत शीघ्र कीड़े लग जाते हैं। मेन्डेल के नियमानुसार फ़ैक्टर्स के विभिन्न प्रकार के सम्मिश्रण होने के कारण, 'सुप्त' (Recessive) और 'व्यक्त' (Dominant) लक्षणों के रहने से, ऐसे विचित्र वंशजों की उत्पत्ति होती है*।

* देखिए—Human Heredity by Baur, Fischer and Lenz—Pp. 45. 47, 53, 55, 61.

ये नियम, पौधों और जन्तुओं की तरह, मनुष्यों को भी बहुत कुछ लागू हैं। मनुष्यों में कितने ऐसे 'गुण' (फ़ैक्टर्स) हैं जो वंशजों में प्रकट होते हैं, इसका पूरा पता अभी तक प्राप्त नहीं है; किन्तु इनकी संख्या बहुत अधिक है। इसके उपरान्त 'सुप्त' (Recessive) और 'व्यक्त' (Dominant) लक्षणों के रहने के कारण वंशानुक्रम की प्रक्रियाएँ अत्यन्त जटिल बन गई हैं। कभी तो 'सुप्त' (Recessive) या 'व्यक्त' (Dominant) लक्षण केवल स्त्री अथवा केवल पुरुष वंशज में ही प्रकट होता है, अथवा कुछ फ़ैक्टर्स कहीं-कहीं संयुक्त रूप से ही प्रकटित होते हैं, स्वतन्त्र रूप से नहीं, एवं कभी-कभी ऐसा भी होता है कि दो फ़ैक्टर्स एकत्र प्रकट नहीं होते। ऐसा देखा गया है कि पिता का रोग न तो पुत्र और न पुत्री में किन्तु पुत्री के सन्तानों में जाकर प्रकट हुआ। (इसे अँगरेज़ी में Sex-linked characters or factors कहते हैं।)

मेन्डेल के नियमों को छोड़कर दूसरे प्रकार से भी वंशानुक्रम हुआ करता है; परन्तु उसके नियमों का अभी तक विशेष पता नहीं चला है। किन्तु किन प्रक्रियाओं से माता-पिता के गुण-अवगुण सन्तान में उत्पन्न होते हैं, इसका यथेष्ट ज्ञान प्राप्त हो चुका है।

मेन्डेल का आविष्कार और कृषि आदि की उन्नति—मेन्डेल के नियमानुसार वंशानुक्रम-विज्ञान के प्रयोग से यूरोप, अमेरिका और जापान में गृह-पालित पशुओं और पेड़-पौधों की अद्भुत उन्नति हो रही है। हमारे देश में प्रायः एक ही प्रकार के छोटे-छोटे आलू उत्पन्न होते हैं। अधिक से अधिक कुछ अपेक्षाकृत बड़े नैनीताली आलू भी हमें देखने को मिल जाते हैं किन्तु जापान और अमेरिका आदि देशों में इतने बड़े-बड़े आलू उत्पन्न किये गये हैं कि एक-एक आलू तौल में डेढ़-डेढ़ पाव से

भी अधिक होते हैं; कुम्हड़े एक-एक मन तक के हुए हैं। उन देशों में कोई ऐसी सब्ज़ी नहीं है, कोई ऐसा फल नहीं है, अथवा अण्डा, मुर्ग़ी, दुम्बा, बकरी आदि ऐसा कोई पालतू पशु या पक्षी नहीं है, जिसकी मेन्डेलियन आदि रीतियों के अनुसार प्रभूत उन्नति न की गई हो। गृहपालित पशु और खेती के बारे में तो वंशानुक्रम-विज्ञान का यूरोप आदि देशों में अच्छा प्रयोग होने लगा है, किन्तु मनुष्य-समाज के सम्बन्ध में अभी तक इस विज्ञान का प्रयोग नहीं के बराबर हुआ है। तथापि आज पाश्चात्य देशों में और जापान में, बड़ी-बड़ी वैज्ञानिक समितियाँ बनी हैं, जिनका कार्य वंशानुक्रम-विज्ञान के अनुसार समाज का पुनस्सङ्गठन करना है। किन्तु भारतवर्ष में आज भी इस विषय पर गम्भीर रूप से विचार तक प्रारम्भ नहीं हुआ है।

मेन्डेलियन रीति के अनुसार कैसे पौधों की उन्नति की जाती है, इसके कुछ दृष्टान्त यहाँ दिये जाते हैं। सेम के पौधे को ले लीजिए। जब इन पौधों की अच्छी सेवा की जाती है, जल-वायु अनुकूल होती है एवं खाद का अच्छा प्रयोग होता है, तब पौधों की अच्छी उन्नति होती है। किन्तु इन पौधों से जो सेम उत्पन्न होती हैं वे सब एक सी नहीं होतीं। उनमें छोटी-बड़ी सब प्रकार की होती हैं। अब इन सेमों में से बड़ी-बड़ी सेमों के बीज को यदि अलग कर लिया जाय तो यह देखा गया है कि इन बड़ी सेमों के बीजों से जो नये पौधे निकलेंगे, उनमें से भी पहले की तरह छोटी-बड़ी सेमें उत्पन्न होती हैं, केवल बड़ी सेमें नहीं उत्पन्न होतीं। और यदि केवल छोटी सेमों के बीज भी अलग लगाये जायँ तो उनमें से भी ठीक पहले की तरह छोटी-बड़ी सेमें उत्पन्न होती हैं। अर्थात् केवल छँटाई से पौधों की अधिक उन्नति नहीं हो सकती।

एक दूसरा दृष्टान्त लीजिए। इँगलैंड में जो गेहूँ उत्पन्न होता है उसकी नस्ल अच्छी नहीं होती; किन्तु उसकी पैदावार अच्छी होती है। इसके विपरीत अमेरिका में जो गेहूँ उत्पन्न होता है वह इँगलैंड के गेहूँ से अच्छा होता है; किन्तु अमेरिका के गेहूँ की पैदावार इँगलैंड के गेहूँ से कम होती है। बीफ़ेन (Biffen) नामक एक वैज्ञानिक ने एक नवीन प्रकार का गेहूँ उत्पन्न करना चाहा, जिसमें उपज तो अमेरिका के गेहूँ से अधिक हो किन्तु गुण में वह इँगलैंड के गेहूँ से अच्छा, अमेरिका के गेहूँ की तरह हो। बीफ़ेन (Biffen) ने यह देखा कि अमेरिका के गेहूँ का जो अच्छापन है वह मेन्डेल की भाषा में डामिनेन्ट अर्थात् 'व्यक्त' गुण-युक्त है। जब उन्होंने अँगरेज़ी और अमेरिका के गेहुओं का संयोग कराया तो उनमें से सब अमेरिका की तरह अच्छे गेहूँ उत्पन्न हुए और इसके बाद की पीढ़ी में मेन्डेल के नियमानुसार एक और तीन के अनुपात में अच्छे और बुरे दोनों प्रकार के गेहूँ उत्पन्न हुए। फिर इनमें से निर्वाचन करते-करते एक नवीन प्रकार का गेहूँ उत्पन्न हुआ, जिसकी पैदावार तो इँगलैंड के गेहूँ की तरह हुई किन्तु गुण में वह अमेरिका के गेहूँ की तरह हुआ। इसके बाद भी परीक्षाएँ होती रहीं, और आजकल उनके परिणाम में इँगलैण्ड के गेहूँ की प्रभूत उन्नति हुई है। गेहूँ के अच्छे होने की यह भी एक पहचान है कि उसमें कीड़े जल्दी न लगें और वह अन्य किसी प्रकार से रोग-ग्रस्त न हो जाय। इँगलैंड का गेहूँ जल्दी रोग-ग्रस्त हो जाता था; किन्तु रूस का एक प्रकार का घुटका नाम का गेहूँ इस विषय में बहुत अच्छा है। इसमें जल्दी रोग नहीं पकड़ता है। बीफ़ेन ने अँगरेज़ी गेहूँ के साथ रूस के इस घुटका नाम के गेहूँ का संयोग कराया। फिर पूर्वोक्त प्रकार से निर्वाचन के

परिणाम में उन्होंने ऐसा गेहूँ उत्पन्न किया है जो अमेरिका के गेहूँ की तरह अच्छा होता है, इँगलैंड की तरह उसकी पैदावार अच्छी होती है एवं रूस के गेहूँ की तरह वह जल्दी रोग-ग्रस्त नहीं होता। इसके अतिरिक्त यह गेहूँ जाड़े तथा वसन्त ऋतु में पैदा किया जा सकता है।

कभी-कभी ऐसा भी देखा गया है कि पौधों को रोगमुक्त करना असम्भव नहीं तो अत्यन्त कठिन कार्य अवश्य है। एक दूसरी तरकीब से पौदों की ऐसी उन्नति भी की जा सकती है, जिससे वे रोगग्रस्त ही न हो सकें। अमेरिका में कुछ ऐसे गेहूँ उत्पन्न होते हैं, जिनमें शरद् ऋतु में रोग उत्पन्न हो जाते हैं। इस रोग से मुक्त करने के लिए उन गेहुँओं का, देशस्थ, तथाकथित असभ्य निवासियों द्वारा उत्पन्न किये जानेवाले एक दूसरे प्रकार के गेहुँओं के साथ संयोग कराया गया। इसके परिणाम में ऐसे गेहूँ उत्पन्न हुए, जो शरद् ऋतु के दो-एक सप्ताह पूर्व ही तैयार हो जाने लगे। इस प्रकार वे गेहूँ शरद् ऋतु के रोग से मुक्त हो गये।

सोवियट रूस में और भी कई विस्मयकर आविष्कार हुए हैं। वहाँ पर गेहूँ और राई में संयोग करा के एक नवीन प्रकार का गेहूँ उत्पन्न किया गया है। जिन प्रान्तों में पहले न गेहूँ ही उत्पन्न हो सकता था और न राई ही, उन प्रान्तों में अब इस नवीन प्रकार का गेहूँ यथारीति उत्पन्न हो सकता है। वहाँ पर इससे भी एक और आश्चर्य-जनक बात हुई है। रूस में एक प्रकार की घास पैदा होती है, जिसे काउच ग्रास कहते हैं। प्रतिवर्ष यह घास अपने आप उगा करती है। ज़मीन के नीचे इसके बीज सदा के लिए रहते हैं। सोवियट रूस के वैज्ञानिकों ने इस घास के साथ गेहूँ का संयोग कराया है, जिसके परिणाम में अब रूस के एक विशेष प्रान्त में काउच ग्रास की तरह गेहूँ भी प्रतिवर्ष अपने आप पैदा हुआ करता है। यह गेहूँ अभी बहुत अच्छे प्रकार का नहीं हुआ

है; किन्तु इस पर अभी परीक्षाएँ हो रहा हैं। आशा की जाती है कि शीघ्र ही इसकी उन्नति हो जायगी।

गेहूँ के अतिरिक्त आलू के सम्बन्ध में भी रूस में बहुत सी परीक्षाएँ हो चुकी हैं और हो रही हैं। विगत १६वीं शताब्दी में दक्षिण एवं मध्य अमेरिका से दो प्रकार के आलू यूरोप में पहुँचे थे। इन दो प्रकार के आलुओं से ही नये-नये आलू उत्पन्न होने लगे। रूस में आलू की उन्नति के लिए नाना प्रकार की परीक्षाएँ होने लगीं। इन परीक्षाओं का उद्देश्य ऐसे आलू उत्पन्न करना था, जिनकी ख़ूब पैदावार हो, जिन्हें बाज़ार में सबसे पहले पहुँचाया जा सके, ताकि अधिक से अधिक दाम वसूल हो सके, जो देखने में न अधिक बड़े ही हों और न अधिक छोटे, जिनकी गोलाई अण्डे की तरह हो और छिलका ख़ूब पतला हुआ करे, जिनका रंग ख़ूब साफ़ हो, जो खाने में स्वादिष्ट हों, जल्दी गल जाया करें और जिनमें जल्दी रोग न उत्पन्न हो सकें। किन्तु कुछ परीक्षाओं के बाद यह देखा गया कि थोड़ी उन्नति होने के पश्चात् उन्नति रुक गई। तब दक्षिण और मध्य अमेरिका के पेरू, बोलीविया, चिली, मैक्सिको, ग्वातेमाला आदि स्थानों से नवीन प्रकार के आलू लाने के लिए आदमी भेजे गये। इन प्रदेशों में ही आलू के प्रति प्रकृति देवी की विशेष कृपा थी। इन प्रदेशों से नाना प्रकार के आलू रूस में लाये गये। इन नई नस्लों से अब रूस में नाना प्रकार के आलू उत्पन्न किये गये हैं। इन नवीन प्रकार के आलुओं में अब जल्दी रोग नहीं लग सकते, पाला से भी अब ये नष्ट नहीं होते हैं और ऐसे प्रान्तों में ये उत्पन्न किये जाने लगे हैं, जहाँ पर पहले आलू नहीं होते थे।

यूरोप में गेहूँ का जैसा आदर है, वैसा ही आदर भारतवर्ष तथा अमेरिका में भुट्टा का भी है। हाइड्रालिसिस (Hydrolysis) नामक एक प्रक्रिया द्वारा भुट्टे से चीनी बनाई जाती है। भुट्टों से

शराब भी बनती है, शिल्प में व्यवहार-योग्य स्पिरिट भी बनती है और इसके अतिरिक्त इससे दूसरे पदार्थ भी बनते हैं। भुट्टे के पेड़ से काग़ज़ तथा नक़ली रेशम आदि भी बनते हैं। इन सब कारणों से अमेरिका में भुट्टों के बारे में भी बहुत सी परीक्षाएँ हुई हैं और उससे वहाँ पर बहुत कुछ उन्नति की गई है।

सोवियट रूस में गेहूँ के बारे में ऐसी उन्नति की गई है कि वहाँ पर जाड़े की फ़सल गर्मियों में और गर्मी की फ़सल जाड़ों में उत्पन्न की जा सकती है। उस देश में जंगलों में एक प्रकार का पौदा होता है, जिससे रबर निकलती है। रूस के वैज्ञानिकों ने उस जंगली पौधे को अपनी इच्छा के अनुसार लगाया है, और उससे अच्छा रबर उत्पन्न किया है। सन् '३९ के मार्च महीने में मास्को में इन वैज्ञानिकों का एक सम्मेलन हुआ था। उस सम्मेलन में उपर्युक्त बातों पर बहुत प्रकाश डाला गया था।

तीसरा परिच्छेद

वंशानुक्रम की प्रक्रियाएँ

जीव की उत्पत्ति—हमारे उपनिषद् के एक महावाक्य से संसार आज भली भाँति परिचित हो गया है—एकोऽहं बहु स्याम्। एक से ही बहुत हुआ है। एक तनिक-से बीज से, कितना विशाल वट वृक्ष उत्पन्न हो जाता है। एक से ही समस्त विचित्रताएँ परिस्फुट होती हैं। समता से विषमता में, अव्यक्त से व्यक्त में जाने का ही नाम सृष्टि है। यह परिदृश्यमान जगत् कितना वैचित्र्यपूर्ण है; किन्तु इसका विकास एक वस्तु से ही हुआ है। इस कारण इस संसार में सहस्रों विचित्रताओं के बीच कुछ सादृश्य

भी दृष्टिगोचर होता है। इन विषमताओं में सादृश्य को देखना ही ज्ञान-विज्ञान का कार्य है।

जीव-विज्ञान से आज यह पता चला है कि एक ही प्राणवस्तु विशिष्ट क्षुद्र कोष से समस्त प्राणिजगत् की सृष्टि हुई है। संसार में सबसे क्षुद्र प्राणी में एक ही कोष रहता है। मलेरिया, हैज़ा, प्लेग आदि के रोग जिन जीवाणुओं से उत्पन्न होते हैं उन्हें बैक्टीरिया कहते हैं। संभवतः जीव-संसार में इनसे छोटे जीवों का अस्तित्व नहीं है। एक ही कोष से इनकी देह बनती है। ऐसे भी जीव हैं, जिनकी देह अनेक कोषों के सम्मिलन से बनती है। इन कोषों से विस्मयकर वस्तु संसार में शायद दूसरी कोई न हो। प्राणशक्ति की एक बूँद को जीव-कोष कह सकते हैं। कोष एक जीवन्त वस्तु है। मनुष्य-देह में कोटि-कोटि कोष वर्त्तमान हैं। मनुष्य-देह के कोष को सिनेमा के चित्रपट पर, उसकी प्रकृति को कई गुना बढ़ाकर, दिखाया जा सकता है। उस समय उसकी आकृति मनुष्य से भी बढ़ जाती है और तब उस कोष के अन्तर्गत नाना प्रकार के अङ्ग-प्रत्यङ्ग के विचित्र संचालनों को हम स्पष्ट देख सकते हैं। मनुष्य के वीर्य की एक बूँद में दस करोड़ कोष हैं। दन्त-मंजन के एक छोटे से ट्यूब पर की टोपी में जितना वीर्य आ सकता है उसमें सौ करोड़ कोष रह सकते हैं। अब पाठक अनुमान कर सकते हैं कि ये कोष कितने छोटे होते हैं। इन्हीं कोषों के समूह से अङ्ग-प्रत्यङ्ग बनते हैं। इन व्यक्तिगत कोषों की अपेक्षा कोषों के समूह के बारे में वैज्ञानिक-गण कहीं अधिक जानते हैं।

जीव-कोष से ही जीव की उत्पत्ति—जीव दो प्रकार के होते हैं—एक जिसमें केवल एक ही कोष रहता है और दूसरा जिसमें बहुत कोष रहते हैं। जीव की उत्पत्ति कोष से ही होती है। प्रधानतः तीन प्रकार से जीव की वंशवृद्धि होती है। इस

संसार में प्रथम जीव की उत्पत्ति कैसे हुई है, कैसे इस जड़ जगत् में सबसे पहले प्राणशक्ति का स्फुरण हुआ है—यह एक अत्यन्त गूढ़, रहस्यपूर्ण एवं जटिल वैज्ञानिक प्रश्न है। यह आधुनिक विज्ञान का एक विशेष अनुसन्धान का विषय है। हम यहाँ पर केवल इतना ही कह देना पर्याप्त समझते हैं कि आधुनिक विज्ञान के अनुसार, प्राण से ही प्राण की उत्पत्ति होती है—ऐसा माना जाता है। और इस प्राणशक्ति का अन्तिम रूप जीवित जीव-कोष में ही प्राप्त होता है। कभी तो एक-कोष-विशिष्ट जीव द्विखण्डित होकर दूसरा जीव बनता है और कभी बहु-कोष-विशिष्ट जीव से केवल एक ही कोष निकलकर उससे दूसरा जीव उत्पन्न होता है। कभी-कभी बहु-कोष-विशिष्ट जीव-देह से कोषों का समूह अथवा उसका एक विशेष अङ्ग देह से अलग हो जाता है और उससे नवीन जीव की उत्पत्ति होती है। इसके अतिरिक्त कभी एक ही देह से दो कोष निकलते हैं और इन दोनों कोषों के सम्मेलन से एक नवीन जीव की उत्पत्ति होती है। और कभी-कभी दो जीवों से एक-एक कोष निकलकर सम्मिलित होते हैं और उससे एक नवीन जीव का जन्म होता है। अन्त में कही गई इस रीति में ही मैथुन के परिणाम में जीव की उत्पत्ति होती है। दूसरी रीतियों में बिना मैथुन के ही जीव की उत्पत्ति हो सकती है।

जीव-वैज्ञानिकगण कहते हैं कि जैसे और स्थानों में वैसे ही प्राणि-जगत् में भी प्रकारभेद अर्थात् श्रेणीभेद का करना प्रायः असम्भव है। विभिन्न श्रेणियाँ एक दूसरी से इतने घनिष्ठ रूप से सम्बन्धित हैं कि एक श्रेणी को दूसरी श्रेणी से अलग करना अत्यन्त कठिन कार्य है, तथापि विषय को समझने के लिए श्रेणी-विभाजन की विशेष आवश्यकता होती है।

एक-कोष-विशिष्ट जीव की वंश-वृद्धि तीन प्रकार से हो सकती है—(१) एक कोष के दो टुकड़े हो जाते हैं और इस प्रकार

एक जीव के स्थान पर दो जीव उत्पन्न हो जाते हैं। इस प्रकार पिता की देह से दो देहों की उत्पत्ति होती है, और पिता के अस्तित्व का अवसान हो जाता है। जीव-उत्पत्ति की इस रीति को अँगरेज़ी में फ़िशन (Fission) कहते हैं। (२) पिता की देह पर एक नवीन देह उगती है और फिर वह नवीन उद्गत देह पितृ-देह से अलग हो जाती है। इस दूसरी रीति में पितृ-देह का अवसान नहीं होता। जीव-उत्पत्ति की इस रीति को अँगरेज़ी भाषा में बडिङ्ग (Budding) कहते हैं। इस रीति में भी एक कोष के ही दो टुकड़े हो जाने का दृष्टान्त मौजूद है। (३) एक कोष से ही बहु-कोषों की उत्पत्ति होने को स्पॉरयूलेशन् (Sporulation) कहते हैं। इस रीति का एक और विशेष रूप भी दृष्टिगोचर होता है। जब पितृ-देह पर एक कोष निकलकर वह उससे अलग नहीं हो जाता और पितृ-देह पर रहते हुए ही वह कोष अपना नवीन जीवन प्रारम्भ करता है तब उस विचित्र जीव को कॉलोनी (Colony) कहते हैं।

इन रीतियों में बिना मैथुन के ही नवीन जीव की सृष्टि होती है; किन्तु इस नियम का अपवाद देखा जाता है।

बहु-कोष-विशिष्ट जीव की वंशवृद्धि प्रधानतः दो प्रकार से होती है—(१) देह का विभाजित हो जाना:—कभी तो केवल एक कोष पितृ-देह से निकलकर एक अलग जीव बनता है, और कभी बहुकोष, सामूहिक रूप से पितृ-देह से अलग हो जाते हैं। इन कोषों के सामूहिक रूप से ही देह के अङ्ग-प्रत्यङ्ग आदि बनते हैं। इसका अर्थ यह हुआ कि पितृ-देह का एक अङ्ग, देह से अलग होकर, स्वतन्त्र जीव बन जाता है। इस रीति में भी मैथुन की क्रिया दृष्टिगोचर नहीं होती। (२) इस दूसरी रीति में मैथुन के परिणाम में ही जीव की उत्पत्ति होती है। मैथुन की रीतियों में भी बहुत ही रहस्यपूर्ण बातें पाई जाती हैं। एक तो वह रीति है,

जब पुरुष का वीर्य स्त्री के अण्ड में प्रविष्ट होता है। ये पुरुष और स्त्री स्वतन्त्र रूप से जीवन बिताते हैं। ऐसा भी देखा गया है कि एक ही प्राणी में पुरुष का वीर्य और स्त्री का अण्ड दोनों उत्पन्न होते हैं। पौधों में और निम्नस्तर के जीवों में ऐसे दृष्टान्त प्राप्त होते हैं। कभी-कभी ऐसा भी देखा गया है कि पुरुष के वीर्य के साथ संयुक्त न होकर भी स्त्री के अण्डे से ही जीव की उत्पत्ति होती है। इसे अँगरेज़ी में पार्थेनोजेनेसिस् (Parthenogenesis) कहते हैं।

सबसे सरल आकार-विशिष्ट जीव और पौधों में केवल एक ही कोष के अस्तित्व का प्रमाण मिलता है। किन्तु ऐसी भी वस्तुएँ हैं जिन्हें न पौधा ही कहा जा सकता है और न जन्तु ही। इन वस्तुओं को अँगरेज़ी में प्रोटिस्टा (Protista) कहते हैं। ऐसा अनुमान किया जाता है कि प्रोटिस्टा से ही उद्भिज और प्राणियों की उत्पत्ति हुई है; अर्थात् प्राणी और उद्भिजों में सीमा-रेखा का खींचना सम्भव नहीं।

कोष का विभाजन और उसका परिणाम—कोष के विकास की एक सीमा है। उस सीमा तक पहुँचने पर कोष दो टुकड़ों में विभाजित हो जाता है। ये कोष के दो टुकड़े फिर अपनी पूर्णता को प्राप्त कर लेते हैं। इस प्रकार एक-कोष-विशिष्ट जीव से दूसरे जीव की उत्पत्ति होती है। यह दूसरा जीव अपने पिता के पूर्ण अनुरूप होता है। एक कोष के दो टुकड़े हो जाने की रीति भी बहुत ही रहस्यपूर्ण है। एक कोष के दो टुकड़े होते समय उस कोष के अन्तर्गत समस्त वस्तुएँ भी ठीक-ठीक दो हिस्सों में विभाजित हो जाती हैं। फिर वे आधी-आधी वस्तुएँ पूर्णता को प्राप्त कर लेती हैं।

कोष के अन्दर शहद जैसा एक अर्ध-तरल पदार्थ प्राप्त होता है। इसे अँगरेज़ी में प्रोटोप्लाज़्म (Protoplasm)

कहते हैं। शहद सदृश इस पदार्थ में एक और अण्डाकार पदार्थ भासमान रहता है। इस भासमान अण्डाकार पदार्थ को उस कोष की "नाभि" कह सकते हैं। इसे अँगरेज़ी में न्यूक्लियस (Nucleus) कहते हैं। इस नाभि के अन्दर एक प्रकार के और पदार्थ प्राप्त होते हैं, जो सूत्र के सदृश होते हैं। 'नाभि' के अन्दर ये जाल के समान एक दूसरे से लिपटे फैले रहते हैं। इन पदार्थों को अँगरेज़ी में क्रॉमोसोमस् (Chromosomes) कहते हैं। इस सूत्र-सदृश पदार्थ को हम हिन्दी में वंशसूत्र कहेंगे। नाभि के अन्दर ये वंश-सूत्र (Chromosomes) पानी सदृश एक तरल पदार्थ में भासमान रहते हैं।

कोष के विभाजन को अँगरेज़ी में मॉइटासिस् (Mitosis) कहते हैं। इस विभाजन के कई एक स्तर हैं। वास्तव में कोष का विभाजन तेल की धार सदृश अविच्छिन्न एवं एक परिपूर्ण क्रिया है। किन्तु समझने की सुविधा के लिए इस क्रिया को विभिन्न स्तरों में डालकर हम इस क्रिया को पूर्ण रीति से समझने की चेष्टा करते हैं। इसकी प्रथम स्थिति को अँगरेज़ी में रेस्टिंग फेज़ (Resting Phase) कहते हैं और हिन्दी में हम इसे साधारण स्थिति कह सकते हैं। इस साधारण स्थिति में न्यूक्लियस अर्थात् नाभि के अन्दर की वस्तुओं को हम ठीक-ठीक देख नहीं पाते। इसके अन्दर जो लम्बे और सूक्ष्म सूत्र-सदृश पदार्थ रहते हैं वे इस प्रकार एक दूसरे में लिपटे रहते हैं कि उन सूत्रों को अलग-अलग देखना असम्भव सा है। जिस तरल पदार्थ में ये सूत्र भासमान रहते हैं, उसमें ये मानों कोष की साधारण स्थिति में घुले रहते हैं। जब इस कोष में कोई रङ्ग डाला जाता है, तब यह देखने में आया है कि न्यूक्लियस अर्थात् 'नाभि' के स्थान पर अधिक रङ्ग एकत्र होता है। फिर जब किसी ऐसिड से

इस रङ्ग को साफ़ कर दिया जाता है तब कोष का और सब स्थान तो साफ़ हो जाता है; किन्तु 'नाभि' अथवा न्यूक्लियस के स्थान में कुछ रङ्ग रह ही जाता है। 'नाभि' और कोष में स्थित शहद सदृश अर्ध-तरल पदार्थ के बीच एक सूक्ष्म पर्दा रहता है। यह पर्दा और इसके अन्तर्गत 'नाभि' के अन्दर स्थित पानी-से तरल पदार्थ में रङ्ग नहीं टिकता। किन्तु इस पानी-सदृश पदार्थ में, तैरते हुए, अपेक्षाकृत एक कठिन पदार्थ और इसके अतिरिक्त सूत्र-सदृश कुछ और पदार्थ हैं। इन सब पदार्थों में ही रङ्ग ठीक-ठीक जमता है। ऐसिड के देने पर भी यह रङ्ग जाता नहीं। इन सूत्र-सदृश पदार्थों को क्रोमैटिन (Chromatin) कहते हैं और नाभि के बीच के कठिन पदार्थ को न्यूक्लिओलस् (Neucleolus) कहते हैं। सब कोषों में न्यूक्लिओलस् नहीं रहते हैं। इस नाभि के बाहर एक और पदार्थ रहता है जिसका अँगरेज़ी नाम सेन्ट्रॉसोम (Centrosome) है। सेन्ट्रॉसोम भी सब कोषों में नहीं रहते। इन सब पदार्थों के अतिरिक्त कोष में और भी पदार्थ रहते हैं, जिनका पूरा वर्णन यहाँ पर नहीं दिया जा सकता।

रेस्टिङ्ग फेज़ अर्थात् साधारण स्थिति के बाद कोष-विभाजन की दूसरी स्थिति को अँगरेज़ी में प्रोफेज़ (Prophase) कहते हैं। हम अँगरेज़ी नाम इसलिए दे रहे हैं कि इससे पाठकों को बाद में इस विषय पर बड़ी पुस्तक पढ़ने में सुविधा होगी। इन सब नामों और इनकी क्रियाओं से परिचित हो जाने से पाठक को विषय के समझने में बहुत आसानी होगी। इस द्वितीय स्थिति में क्रॉमोसोम अर्थात् वंश-सूत्र स्पष्ट दिखाई देने लगते हैं और तब यह प्रतीत होता है कि ये क्रॉमोसोम अर्थात् वंश-सूत्र जोड़े-जोड़े में हैं। इस एक-एक जोड़े के एक-एक हिस्से को क्रोमैटिड्स (Chromatids) कहते हैं। द्वितीय स्थिति में ये वंश-सूत्र

सङ्कीर्ण होने लगते हैं। छोटे होते-होते ये अपने बीसवें हिस्से तक लम्बाई में छोटे हो जाते हैं। इस दूसरी स्थिति में एक-एक जोड़ा क्रॉमोसोम अर्थात् वंश-सूत्र अलग-अलग रहते हैं और उनके दोनों भाग एक दूसरे से लिपटे दिखाई देते हैं। इस दूसरी स्थिति में ये क्रॉमोसोम अर्थात् वंश-सूत्र कुण्डलाकार रहते हैं। एक क्रॉमोसोम के दोनों भाग कैसे एक दूसरे से युक्त रहते हैं, अभी तक इसका रहस्योद्घाटन नहीं हो पाया है। कोई अदृश्य शक्ति क्रॉमोसोम के दोनों भागों को एक दूसरे के साथ संयुक्त रखती है। क्रॉमोसोम अर्थात् वंश-सूत्र के दोनों भाग एक दूसरे के बिलकुल अनुरूप होते हैं। कोष-विभाजन की दूसरी स्थिति में 'नाभि' के बाहर स्थित सेन्ट्रॉसोम भी दो भागों में विभाजित हो जाता है, और ये दोनों भाग एक दूसरे से कुछ दूरी पर खिसक जाते हैं।

कोष-विभाजन की तृतीय स्थिति में क्रॉमोसोम और भी छोटे और मोटे हो जाते हैं और इस बीच में सेन्ट्रॉसोम के दोनों भाग 'नाभि' के दोनों तरफ़ ठीक एक दूसरे के मुक़ाबले में आ जाते हैं। 'नाभि' के इन दोनों स्थानों को, जहाँ पर सेन्ट्रॉसोम के दोनों भाग एक दूसरे के मुक़ाबले में आ जाते हैं, पोल्स (Poles) कहते हैं। इस मुहूर्त्त में 'नाभि' और कोष के अन्दर के राब सदृश अर्ध-तरल पदार्थ के बीच का पर्दा लुप्त हो जाता है; तब क्रॉमोसोम कोष के अन्दर उस अर्ध-तरल पदार्थ में भासमान रहने लगता है। इन सब परिवर्त्तनों के साथ-साथ कोष के अन्दर स्थित दूसरे पदार्थों में भी परिवर्त्तन होते रहते हैं। पाठक याद रक्खेंगे कि इस तीसरी स्थिति में सेन्ट्रॉसोम दो भागों में विभाजित होकर, एक दूसरे के मुक़ाबले में, 'नाभि' के दोनों ओर आ जाते हैं। इन दोनों 'पोलों' में स्थित सेन्ट्रॉसोम के बीच के पदार्थ इस तरह से सज जाते हैं, मानों किसी छोटी सी लकड़ी के टुकड़े में सूत लपेटने से बीच में फूल आया हो। ये पदार्थ उस समय रेशे जैसे दिखलाई पड़ते

हैं। इन दोनों पोलों के बीचोबीच के स्थान को इक्वेटर (Equator) कहते हैं। कोष-विभाजन की तृतीय स्थिति में क्रॉमोसोम अर्थात् वंश-सूत्र इक्वेटर के पास चले आते हैं। इस तृतीय स्थिति को अँगरेज़ो में मेटाफेज़ (Metaphase) कहते हैं।

कोष के विभाजन की चतुर्थ स्थिति को अनॉफेज़ (Anaphase) कहते हैं। इस स्थिति में एक जोड़ा क्रॉमोसोम के दोनों भाग, जो कि एक दूसरे के अनुरूप होते हैं, दोनों पोलों की ओर चलने लगते हैं। इस प्रकार प्रत्येक पोल में एक-एक जोड़ा क्रॉमोसोम के आधे-आधे भाग एकत्र हो जाते हैं। अर्थात् दोनों पोलों में स्थित सेन्ट्रॉसोम के आधे-आधे टुकड़े एक-एक 'नाभि' अर्थात् न्यूक्लियस् की तरह बन जाते हैं, और उन 'नाभियों' में एक जोड़ा क्रॉमोसोम के आधे-आधे क्रॉमोसोम आ जाने से एक कोष दो कोषों में परिणत होने लगता है।

कोष-विभाजन की पाँचवीं स्थिति को टेलोफेज़ (Telophase) कहते हैं। कोष-विभाजन की यह अन्तिम स्थिति है। इस स्थिति में 'नाभि' और कोष के अन्दर स्थित अर्ध-तरल पदार्थ के बीच फिर एक सूक्ष्म पर्दा बनता है, और आधे-आधे क्रॉमोसोम फिर अपनी पूर्णता को प्राप्त कर लेते हैं। यह अन्तिम स्थिति, कोष की पहली स्थिति की तरह, साधारण स्थिति में परिणत हो जाती है। एक जोड़ा क्रॉमोसोम का एक हिस्सा फिर कैसे जोड़ा बन जाता है, इसमें वैज्ञानिकों में मतभेद है। किसी-किसी का कहना है कि एक जोड़े का आधा हिस्सा क्रॉमोसोम कोष में स्थित पदार्थों से ही अपना जोड़ा बना लेता है, और किसी-किसी का यह अनुमान है कि एक हिस्सा क्रॉमोसोम लम्बाई में दो टुकड़े में हो जाता है, और फिर ये टुकड़े अपनी पूर्णता को प्राप्त कर लेते हैं। इस प्रकार एक कोष, द्विखण्डित होकर, दो कोषों में परिणत हो जाता है।

१ (क) १ (ख)

क्रोमैटिन
न्यूक्लियस्
कोष
सेन्ट्रोसोम
न्यूक्लियोलस्
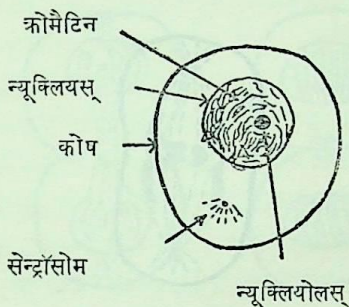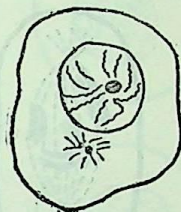
१—(क) और (ख)—कोष की साधारण स्थिति (Resting phase;)। कोष साधारण स्थिति से दूसरी स्थिति में परिवर्तित होने को है।

२ (क) २ (ख)
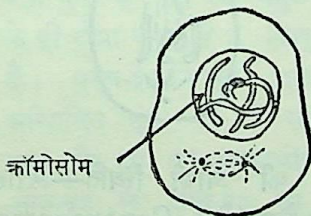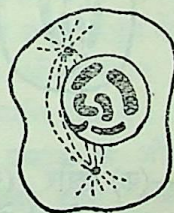
क्रोमोसोम

२—(क) और (ख)—कोष की दूसरी स्थिति—Prophase;
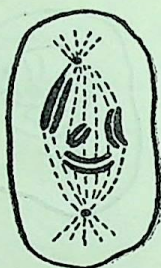
३ (क) ३ (ख)
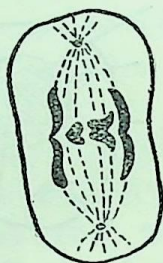
३—(क) और (ख)—कोष की तीसरी स्थिति—Metaphase। इस स्थिति में 'वंश-सूत्र' (Chromosomes) इक्वेटर (Equator) में आ गये हैं।
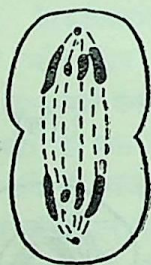
४ (क) ४ (ख)
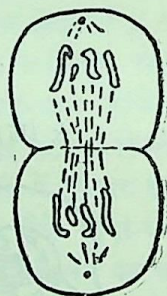
४—(क) और (ख)—कोष की चौथी स्थिति—Anaphase। इस स्थिति में द्विखण्डित सेन्ट्रॉसोम (Centrosome) की दोनों ओर क्रॉमोसोम (Chromosomes) एकत्रित हो रही है।

५ (क) ५ (ख) ६
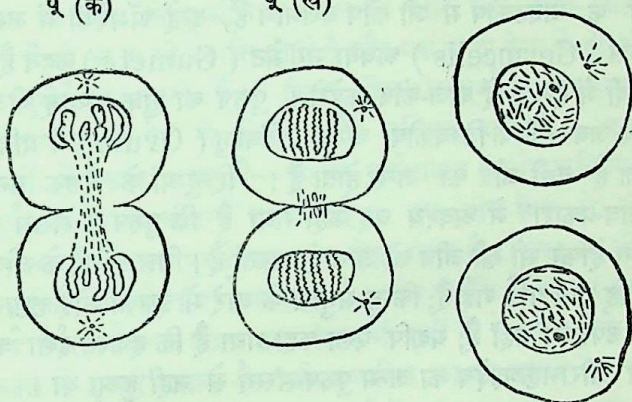
५—(क) और (ख)—कोष-विभाजन की पाँचवीं स्थिति—न्युक्लियस के, केन्द्रबिन्दु, नाभि के चारों ओर पर्दा बन रहा है एवं दो अलग कोष बन रहे हैं।

६—अन्तिम स्थिति—एक कोष से दो कोष बन गये हैं।

इसी प्रकार, एक-कोष-विशिष्ट जीव का वंशवृद्धि एवं बहु-कोष-विशिष्ट जीव-देह की उत्पत्ति तथा उसका विकास एक कोष के द्विखण्डित होने पर और फिर उसकी पूर्ण परिणति हो जाने पर ही हुआ करता है।

मनुष्य का जन्म किस प्रकार होता है—हम पहले ही बता चुके हैं कि ऐसे बहुत से प्राणी हैं जिनका जन्म बिना मैथुन के ही हुआ करता है। किन्तु मनुष्य का जन्म मैथुन से ही होता है। पुरुष-देह-निःसृत शुक्र के साथ स्त्री-देह-स्थित अण्ड के सम्मिश्रित होने पर ही सन्तान की उत्पत्ति होती है। पुरुष का शुक्र और स्त्री का अण्डकोष विशेष प्रकार के जीव-कोष हैं। जीव-देह से जीव-देह की उत्पत्ति नहीं होती। जीव-देह में असंख्य कोष हैं। ये जीव-वस्तु से पूर्ण हैं, जीवन्त हैं; किन्तु इन कोषों से जीव की उत्पत्ति नहीं होती। पुरुष के वीर्य में अथवा

स्त्री के अण्डकोष में जो कोष वर्त्तमान हैं, उन्हें अँगरेज़ी में जर्म-सेल्स (Germcells) अथवा ग्याँमेट (Gamete) कहते हैं। हिन्दी में हम उन्हें बीज-कोष कहेंगे। पुरुष का शुक्र अर्थात् बीज-कोष जब स्त्री के डिम्बकोष अथवा डिंबाणु (Ovum) में प्रविष्ट होता है तभी जीव का जन्म होता है। हिन्दुओं के वैद्यक ग्रन्थ "भाव-प्रकाश" में अवश्य यह कहा गया है कि पुरुष के संसर्ग से रहित होकर भी स्त्री जीव को जन्म दे सकती है। निम्न श्रेणी के जीवों में यह बात पाई गई है; किन्तु मनुष्य के बारे में इसका कोई दृष्टान्त हमें उपलब्ध नहीं है, यद्यपि ऐसा कहा गया है कि हज़रत ईसा का तथा श्रीरामकृष्णदेव का जन्म पुरुष-संसर्ग से नहीं हुआ था।

साधारणतया एक समय में एक ही पुं-बीज-कोष स्त्री के डिम्बाणु में प्रवेश कर सकता है। पुरुष के शुक्र में कोटि-कोटि बीज-कोष रहते हैं। इनमें से केवल एक ही बीज-कोष स्त्री के डिम्बाणु में, अर्थात् स्त्री-बीज-कोष में, प्रवेश कर पाता है। एक पुं-बीज-कोष के, स्त्री के एक डिम्बकोष में प्रविष्ट हो जाने पर डिम्बकोष का बाहरी पर्दा इतना कठिन हो जाता है कि फिर उसमें दूसरा पुं-बीज-कोष प्रवेश नहीं कर पाता। संभव है, पुं-बीज-कोषों में यह प्रतिद्वन्द्विता हो कि कौन बीज-कोष सबसे पहले स्त्री के अण्ड-कोष में प्रविष्ट होगा। ऐसा भी अनुमान होता है कि स्त्री का अण्डकोष भी पुरुष के बीज-कोष को अपनी ओर आकर्षित करता है। पुरुष के कोटि-कोटि बीज-कोष स्त्री के अण्डकोष के चारों ओर तैरते रहते हैं। एक समय अण्डकोष का एक अंश कुछ स्फीत हो उठता है और उसमें केवल एक ही पुं-बीज-कोष प्रवेश कर पाता है। लक्ष-कोटि पुं-बीज-कोषों की आपस की प्रतियोगिता में केवल एक ही पुं-बीज-कोष सफलता को प्राप्त करता है, बाक़ी सब योंही अण्डकोष के चारों ओर तैरते-तैरते विनष्ट हो जाते हैं। इस प्रकार जीव से ही जीव की उत्पत्ति होती है। किन्तु पिता अथवा

माता का एक बिन्दु भी रक्त संतान को प्राप्त नहीं होता—बीज-कोष से ही भ्रूण की उत्पत्ति होती है और एक भ्रूण-कोष से ही जीव की पूरी देह बनती है। किन्तु बीज-कोष पूर्ण देह को बनाकर भी स्वयं पूर्ववत् देह से भिन्न और परिपूर्ण रहता है। हमारे शास्त्रों में कहा गया है—पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते। बीज-कोष इसका जीवन्त दृष्टान्त है। एक बीज-कोष से वंश-परम्परागत अनन्त पुरुषों का जन्म होता रहता है, किन्तु वह बीज-कोष फिर भी पूर्ववत् ही बना रहता है। जीव-उत्पत्ति से बढ़कर दूसरी कोई आश्चर्यजनक घटना इस संसार में नहीं हो सकती। जैसे एक मशाल से दूसरी मशाल में अग्नि प्रज्वलित का जा सकती है, उसी प्रकार एक ही प्राणबिन्दु से अनन्त जीवों का जन्म होता रहता है।

स्त्री का अण्डकोष अथवा अण्डाणु पुरुष के बीज-कोष से बहुत बड़ा होता है। जब पुरुष-बीज-कोष की 'नाभि' अर्थात् न्यूक्लियस् स्त्री-अण्डाणु की नाभि से युक्त होती है, तब भ्रूण-कोष का जन्म होता है। इस भ्रूण-कोष को अँगरेज़ी में ज़ाइगॉट (Zygot) कहते हैं। यही जीव का जन्म है। एक भ्रूण-कोष द्विखण्डित होकर दो कोषों में परिणत होता है। इस प्रकार दो से चार और चार से चार हज़ार और चार हज़ार से कोटि-कोटि कोषों की सृष्टि होती है। किसी कोष-समूह से त्वचा बनती है, किसी से हड्डी और किसी से चक्षु। इस प्रकार स्त्री और पुरुष के एक-एक कोष के मिलने से एक नवीन कोष की उत्पत्ति होती है और इस एक नवीन कोष से जीव की परिपूर्ण देह एवं बीज-कोष बनते हैं।

क्रॉमोसोम और जेनि—प्रत्येक जीव-कोष में एक-एक केन्द्र-बिन्दु अथवा 'नाभि' रहती है। इन केन्द्र-बिन्दुओं में, अर्थात् नाभियों में, कुछ सूत्राकार पदार्थ रहते हैं। कोष के विभाजित होने के पूर्व ये सूत्र स्पष्ट दिखाई नहीं देते। कोष के तरल पदार्थ में ये घुले से रहते हैं। इस घुली हुई अवस्था में इन्हें क्रोमैटिन
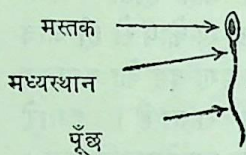
पुरुष के वीर्य में ऐसे अणु-प्रमाण कीट रहते हैं; यही पुरुष के बीज-कोष हैं

(१)
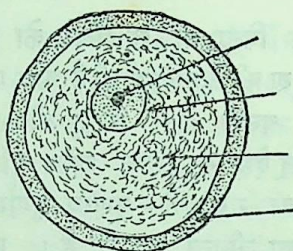
स्त्री का अण्डाणु। यही स्त्री का बीज-कोष है

(२)

(३)

पुरुष का वीर्य अर्थात् बीज-कोष स्त्री के अण्डाणु अर्थात् बीज-कोष में प्रविष्ट हो रहा है।

(४)
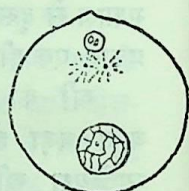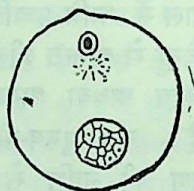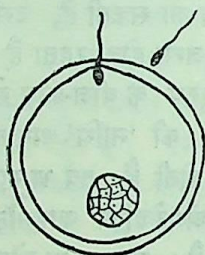
पुरुष के बीज-कोष से पूँछ अलग हो गई है।

(५)

पुरुष बीज-कोष की नाभि द्रवित होने लगी है और सेन्ट्रॉसोम विभाजित होने लगा है

(६)
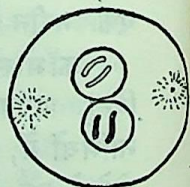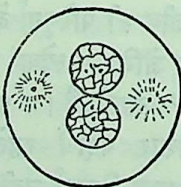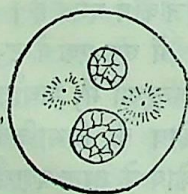
पुरुष और स्त्री बीज-कोष की नाभि एक दूसरे की ओर जा रही है।

पुरुष और स्त्री नाभि स्फीत हो रही हैं।

क्रॉमोसोम दिखाई देने लगे हैं।

(७)

क्रोमोसोम का विभाजन

(८)
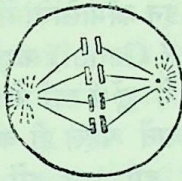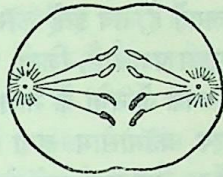
आनाफेज़ की अवस्था

(९)
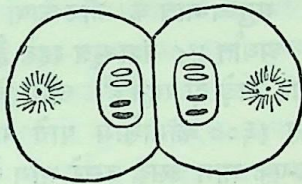
एक कोष से दो कोषों की उत्पत्ति

इस स्थान पर स्त्री के अण्डाणु रहते हैं

जरायु या थैली जिसमें 'भ्रूण' जन्म लेता है और बच्चा माँ के पेट में परवरिश पाता है

स्त्री जब ऋतुमती अर्थात् रजस्वला होती है, तब उसका अण्डाणु जरायु की ओर चलता है

योनि-द्वार से पुरुष-बीज-कोष जरायु के भीतर से स्त्री अण्डाणु की ओर जाता है

लिए, स्त्री और पुरुष जेनि को मिलाकर, बीज-कोष में दो जेनि रहते हैं। मनुष्य का प्रत्येक मानसिक तथा शारीरिक गुण-अवगुण पितृ और मातृ जेनि द्वारा ही नियन्त्रित होता है। किन्तु यदि पितृ और मातृ लक्षण-बीजों में (जेनि में) अन्तर रहता है, तो सन्तान में किसी एक जेनि का ही प्रभाव 'व्यक्त' होता है, दूसरे जेनि का प्रभाव 'सुप्त' रह जाता है; तथापि सुप्त रहने पर भी कोई भी जेनि एकदम लुप्त नहीं होता। ये जेनि अर्थात् लक्षण-बीज एक प्रकार से अमर हैं। मनुष्य अपने प्रत्येक गुण अथवा अवगुण के लिए, दो जेनि, अर्थात् लक्षण-बीज, वहन करता है; किन्तु वह अपनी सन्तान को केवल एक ही जेनि दे सकता है। दूसरा जेनि उसे अपनी माता की ओर से प्राप्त होता है। मान लीजिए "क" जेनि से सुन्दर दृष्टि-शक्ति उत्पन्न होती है, और उसी के जोड़े "क्" जेनि से दृष्टि-शक्ति दुर्बल होती है। तब जिस व्यक्ति में दो "क" जेनि रहेंगे, अर्थात् पिता और माता, दोनों व्यक्तियों से जो व्यक्ति दो "क्" जेनियों को प्राप्त करेगा, उसकी दृष्टि-शक्ति ख़ूब तेज़ होगी; और जिसमें दोनों जेनि "क्" होंगे उसकी दृष्टि-शक्ति दुर्बल हो जायगी। और जिस व्यक्ति में "क" और "क्" दोनों जेनि रहेंगे, उस व्यक्ति में एक जेनि का प्रभाव व्यक्त होगा, दूसरे का, 'सुप्त' रहेगा। किन्तु यह सुप्त प्रभाव एकदम मरता नहीं, भविष्य में, अनुकूल परिस्थिति में, व्यक्त हो सकता है। जिस जेनि से "धवल" रोग उत्पन्न होता है, वह वंश-परम्परा में बराबर चला आ सकता है, किन्तु फिर भी उस वंश में एक भी 'धवल' रोगी का जन्म कई पीढ़ियों तक नहीं भी हो सकता; परन्तु 'धवल' रोग का बीज उस वंश में अवश्य रह जाता है। जब माता-पिता दोनों की ओर से ही 'धवल' रोग-वाहक दोनों जेनियों का सम्मिलन होता है, तब 'धवल' रोगयुक्त व्यक्ति का जन्म होता है। अर्थात् 'जेनि' का नाश पीढ़ियों तक नहीं होता। व्यक्ति बाहर से

देखने में जैसा प्रतीत होता है, वास्तव में वह वैसा नहीं भी हो सकता, और वंश का गुण अथवा दोष पीढ़ियों तक लुप्त नहीं होता। भारतीय वर्ण-व्यवस्था पर विचार करते समय इस बात का ध्यान रखना अच्छा होगा।

ल्यूकेमिया—अभी कुछ दिन पहले तक वैज्ञानिकों की यह धारणा थी कि केवल जेनि द्वारा ही वंश के लक्षण वंशजों में आया करते हैं। किन्तु ल्यूकेमिया नामक एक रोग की चिकित्सा करते समय यह देखा गया कि जेनि के अतिरिक्त दूसरे उपायों से भी ल्यूकेमिया का रोग वंशजों में उत्पन्न हो सकता है। इस रोग के कारण देह के जीव-कोष रोग से आक्रान्त हो जाते हैं। मनुष्य के रक्त में श्वेत एवं लाल कोष रहते हैं। जब देह में रक्त का बनना कम हो जाता है, तब उस रोग को एनिमिया (Anemia) कहते हैं। और जब रक्त में लाल कोष कम होकर श्वेत कोष अत्यन्त अधिक हो जाते हैं, तब उसे ल्यूकेमिया कहते हैं।

आधुनिक विज्ञान की सहायता से देह के विशेष-विशेष अंगों को देह से अलग करके जीवित रक्खा जा सकता है। ये अङ्ग-प्रत्यङ्ग कोषों के समूह हैं। इस प्रकार जब देह के विशेष-विशेष अङ्ग देह से अलग रक्खे जाते हैं तब वे केवल जीवित ही नहीं रहते प्रत्युत समय के अनुसार उनकी वृद्धि भी होती रहती है। किन्तु देह में रहते समय उनकी वृद्धि की एक सीमा रहती है; मानों कहीं से समग्र देह पर किसी का नियन्त्रण होता रहता है। जब देह का कोई विशेष अङ्ग अथवा कोषों का समूह उपर्युक्त नियन्त्रण के बाहर हो जाता है और उनकी अनियन्त्रित वृद्धि होती रहती है, तब वह अङ्ग रोगग्रस्त कहलाता है। इस प्रकार के रोग को अगरेजी में ट्यूमर (Tumor) कहते हैं। ल्यूकेमिया भी एक प्रकार का ट्यूमर है। इस रोग की चिकित्सा करते समय यह जान पड़ा कि जेनि के अतिरिक्त दूसरे उपायों से भी यह रोग

पिता से सन्तान में आ जाता है। वंशानुक्रम-विज्ञान में यह एक अनोखी बात है। जीव की देह समग्र रूप से एक परिपूर्ण वस्तु है। उसमें एक अङ्ग का प्रभाव दूसरे अङ्ग पर पड़ता है। इस कारण यह समझना कि केवल क्रॉमोसोम अर्थात् वंश-सूत्र अथवा जेनि ही वंश-लक्षणों का एकमात्र वाहक है, सर्वांश में एवं सर्वावस्था में सत्य नहीं है।*

किसी भी एक श्रेणी के प्राणी की देह में एक ही प्रकार के कोष होते हैं, और उन कोषों में क्रॉमोसोम अर्थात् वंश-सूत्र की संख्याएँ भी एक ही होती हैं। क्रॉमोसोम तो दृष्टिगोचर होते हैं, किन्तु उनमें जो जेनि रहते हैं, वे अभी तक दृष्टिगोचर नहीं हो पाये हैं। वंशानुक्रम-विज्ञान के एक धुरन्धर पण्डित अमेरिका-निवासी श्रीयुत टी० एच० मॉर्गन महोदय ने इस विषय में अद्भुत खोज की है। उनकी खोज से यह ज्ञात हुआ है कि क्रॉमोसोम में जेनि रहते हैं। ये जेनि वंश-लक्षण के वाहक प्रमाणित हुए हैं। कौन सा जेनि किस गुण का वाहक है, इसका पूरा पता तो नहीं चला है; लेकिन बहुत कुछ पता चल गया है। वैज्ञानिकों ने आज तक किसी भी जेनि को न तो स्वतन्त्र रूप से देख पाया है और

---

* देखिए —Scientific Monthly,—February 1936, Pages 99 to 110

"Leukemic cells arose from leukemic cells and only from leukemic cells....the leukemic cells are direct lineal descendants from the spontaneous case in which they originated. The change that rendered certain cells leukemic is inherited by their desendants indefinitely. If genes were the only means of genetic transmission, we would think that this inherited change involbed genes, but reciprocal crosses have shown that some non-chromosomal mechanism is also indicated..."

न उसके रासायनिक स्वरूप को ही समझ पाया है। उनकी यह दृढ़ धारणा हो गई है कि दही के जामन की तरह जेनि की भी क्रिया होती है। वह स्वयं परिवर्तित न होकर जीव-देह में अद्भुत परिवर्त्तन ला सकता है। बहुत से आधुनिक वैज्ञानिकों के मतानुसार जेनि ही जीवन का सूक्ष्मतम बिन्दु अथवा अणु है।

विज्ञान के क्षेत्र में हमें दो प्रकार की बातें मिलती हैं; एक तो वास्तविक घटनाएँ, जिन्हें हम तथ्य कह सकते हैं, दूसरी वास्तविक घटनाओं के आधार पर वैज्ञानिकगणों द्वारा निर्मित सिद्धान्त। विभिन्न घटनाओं को एक सूत्र में ग्रथित करना सिद्धान्त का कार्य है। जब पुनः नवीन घटनाओं, तथ्यों के आविष्कार से एक नवीन जटिलता की सृष्टि होती है, तब सिद्धान्तों में भी परिवर्त्तन की आवश्यकता हो जाती है। वंशानुक्रम-विज्ञान में 'जेनि' का स्थान वास्तविक घटना अथवा तथ्य की अपेक्षा सिद्धान्त के पर्याययुक्त होना अधिक उपयुक्त प्रतीत होता है। क्रॉमोसोम के बारे में यह बात नहीं कही जा सकती।

'जेनि' के सम्बन्ध में कितनी ही जटिलताएँ दृष्टिगोचर होती हैं, इसका कुछ परिचय यहाँ दिया जाता है। परीक्षाओं के परिणाम में यह देखा गया है कि एक ही जेनि के प्रभाव से कई एक विशेष गुणों की उत्पत्ति होती है और कई एक जेनि के सामूहिक प्रभाव से केवल एक ही गुण को विकसित होते हुए देखा गया है। इस प्रकार केवल एक-एक जेनि अथवा फ़ैक्टर से एक-एक गुण का स्फुरण नहीं होता है। किसी एक व्यक्ति में जितने फ़ैक्टर्स, जेनि अथवा वंश-लक्षण-बीज हैं, वे एक दूसरे पर प्रभाव डालते रहते हैं। इस कार्य को अँगरेज़ी में जेनि कॉम्प्लेक्स (Gene-Complex) कहते हैं। जेनि कॉम्प्लेक्स की क्रिया पारिपार्श्विक वातावरण पर बहुत कुछ निर्भर करती है।

एक और जटिलता का उल्लेख यहाँ किया जा रहा है। यह बात पहले ही बता दी जा चुकी है कि दो प्रकार के पौधों अथवा जीवों के सम्मिश्रण से एक तीसरे प्रकार के पौधे अथवा जीव की उत्पत्ति होती है; जैसे सफ़ेद और लाल फूलों के सम्मिश्रण से एक तीसरे गुलाबी फूलवाले पौधे की उत्पत्ति होती है और फिर इन गुलाबी फूलवाले पौधों से सफ़ेद, लाल और गुलाबी फूलवाले पौधे निकलते रहते हैं। इस दृष्टान्त में गुलाबी फूल को इन्टरमीडियट टाइप (Intermediate Type) अर्थात् मध्यवर्ती जाति कह सकते हैं। इस मध्यवर्त्ती जाति से जैसे उपर्युक्त दृष्टान्त में सफ़ेद, लाल और गुलाबी फूल के पौधे निकलने लगे वैसे ही उस मध्यवर्त्ती जाति से उक्त तीन प्रकार के पौधे अथवा जीव न उत्पन्न होकर केवल एक जाति के अर्थात् मध्यवर्त्ती जाति के पौधे अथवा जीव उत्पन्न हो सकते हैं। अर्थात् गुलाबी फूल के पौधे से गुलाबी ही फूल उत्पन्न होते रहें, यह भी सम्भव है। मनुष्य-जाति में इसका एक अच्छा दृष्टान्त मिलता है। निग्रो जाति के काले-काले मनुष्यों के साथ जब यूरोपियनों का सम्मिश्रण होता है, तो इससे एक तीसरी जाति की उत्पत्ति होती है, जिसको अँगरेज़ी में मलेट्टोज़ कहते हैं। इन मलेट्टोज़ों से एक ही रंग के मनुष्य उत्पन्न होते रहते हैं।

इन मलेट्टोज़ों के संबंध में यह बात भी पाई गई है कि कभी-कभी इन लोगों में शुद्ध श्वेत रंग के एवं काले रंग के व्यक्ति भी उत्पन्न हुए हैं। यह बात तभी सम्भव है, जब कई एक जेनि अथवा फ़ैक्टर्स के मिलने से एक ही रंग की उत्पत्ति होती हो। जिन स्थानों पर एक जेनि से एक हा विशिष्टता की उत्पत्ति होती है, वहाँ तो वंशानुक्रम के व्यापार के लिए सफलता बहुत सरल हो जाती है; किन्तु जहाँ पर कई एक जेनि मिलकर एक विशेषता को उत्पन्न करते हैं अथवा एक ही जेनि कई

एक विशेषताओं को उत्पन्न करता है, वहाँ वंशानुक्रम का व्यापार अत्यन्त जटिल हो जाता है और कभी-कभी वह अबोध्य भी रह जाता है।

एक जेनि से किसी एक विशेषता की उत्पत्ति के कुछ दृष्टान्त इस प्रकार हैं—कभी-कभी एक रोग के कारण मनुष्यों के हाथ-पैरों की उँगलियाँ असाधारण रूप से छोटी-छोटी उत्पन्न होती हैं। एक ही जेनि से ऐसा हुआ करता है। कभी-कभी मनुष्यों के पैरों के निम्न भाग घुटने से एड़ी तक टेढ़े हुआ करते हैं। इसके मूल में भी एक ही जेनि विद्यमान है। इसके विपरीत मनुष्यों की खोपड़ियों की बनावट, आँखों का रङ्ग, दाँतों की बनावट, देहों का रङ्ग, मस्तिष्क का ढाँचा आदि-आदि बातें बहुत प्रकार की जेनियों के सम्मिलन पर निर्भर करती हैं। इस कारण इन सब विषयों में वंशानुक्रम के व्यापार को समझना अत्यन्त कठिन बात हो गई है।*

इस स्थान पर एक और भी बात का उल्लेख कर देना ठीक होगा। वर्त्तमान सोवियट रूस में ऐसे बहुत से वैज्ञानिक हैं, जो मेन्डेल अथवा मॉर्गन के आविष्कारों को स्वीकार नहीं करते। वे मेन्डेल के नियमों की आजकल हँसी उड़ाने लगे हैं। उन वैज्ञानिकों में फ़्रैंकेल, मिचुरिन और लाइसेनको के नाम अधिक प्रसिद्ध हैं।

फ़्रैंकेल (A. J. Frankel) कृषि-विभाग के प्रधान हैं। इनके अतिरिक्त वैविलॉव (Vavilov) एवं जेरबैक (Jerback) नामक दूसरे वैज्ञानिक मेन्डेल और मॉर्गन आदि के आविष्कारों को संसार के अन्य वैज्ञानिकों की भाँति स्वीकार करते हैं। सन्

---

* देखिए ;—Human Heredity-by Baur, Fisher and Lenz Pages. 64, 65, 67 also, Heredity, Eugenics+ Social Progress by H. C. Pribley—Pages. 31, 35.

१९३९ के मार्च महीने में मास्को में जो वैज्ञानिकों का सम्मेलन हुआ था, उसमें ऐसे झण्डे लगे हुए थे, जिनमें यह लिखा था— "डार्विन के झण्डे के नीचे" ("Under the banner of Darwin")। सोवियट रूस के वैज्ञानिकगण इस प्रकार मेन्डेल की हँसी उड़ाते हैं,—एक बाप और तीन माँ की तरह अथवा एक माँ और तीन बाप की तरह। राजनीतिक उत्तेजना की तरह वैज्ञानिक विषयों में भी सोवियट रूस में वैज्ञानिकों में भी मेन्डेल और मॉर्गन के विरुद्ध विषम उत्तेजना फैली हुई है। वहाँ के बहुत से नवीन वैज्ञानिक विश्वविद्यालयों से मेन्डेल, मॉर्गन आदि का बहिष्कार करना चाहते हैं।*

लिंकेज तथा कपलिंग की प्रक्रियाएँ—क्रॉमोसोम अर्थात् वंश-सूत्र तथा जेनि अर्थात् वंश-लक्षण-बीज आदि के सम्बन्ध में मेन्डेल के नियम को ध्यान में रखने से वंशानुक्रम के ज्ञान के सम्बन्ध की बहुत सी बातों को समझना सरल हो जाता है। गोरी माता और काले पिता से सन्तानों के रङ्ग कैसे होंगे, संसार में दो मनुष्य क्यों हू-बहू एक प्रकार के नहीं होते हैं, रोग कैसे वंशजों में उत्पन्न हो सकते हैं, लिंग-भेद की उत्पत्ति कैसे होती है, इत्यादि विषयों को समझना अब सरल हो जायगा।

वंशजों में परिवर्त्तन के तीन कारण हो सकते हैं—(१) एक ही प्रकार के वंश-लक्षण-बीज के रहते हुए भी दो व्यक्तियों में पारिपार्श्विक वातावरण के कारण बहुत से परिवर्त्तन दिखाई दे सकते हैं। (२) मैथुन के कारण माता-पिता से विभिन्न लक्षणयुक्त बीजों के उत्तराधिकारी होने के कारण वंशजों में नाना प्रकार के परिवर्त्तन दिखाई देते हैं। वंशसूत्र (Chromosome) अथवा वंश-लक्षण-बीज (Gene) के विभिन्न प्रकार से सम्मिश्रित होने के

---

* देखिए—Journal of Heredity, April 1940.

कारण ये विभिन्नताएँ उत्पन्न होती हैं। (३) कभी-कभी वंश-लक्षण-बीज (Gene) में ही कुछ अज्ञात कारणों से परिवर्त्तन आ जाते हैं। तब बीज-कोष में परिवर्त्तन हो जाने के कारण जीव-कोष में परिवर्त्तन हो जाता है। इस प्रकार एक नवीन जाति की उत्पत्ति हो जाती है। इन परिवर्त्तनों के अँगरेज़ी नाम क्रम से ये हैं—(१) मॉडोफ़िकेशन्स (Modifications or para-variations), (२) कॉम्बिनेशन्स (Combinations or mixovariations), (३) म्युटेशन्स (Mutations or idiovariations)।

मनुष्यों पर वंशानुक्रम की परीक्षाएँ सम्भव नहीं हैं, इस कारण पौधों तथा निम्न श्रेणी के कीट-पतंगों पर ही परीक्षाएँ हुई हैं। मनुष्यों की एक पीढ़ी के गुज़रने में औसतन् ३० साल लगते हैं। वंशानुक्रम को समझने के लिए बीस-बीस, चालीस-चालीस पीढ़ियों तक की परीक्षाओं की आवश्यकता होती है, इस कारण तथा मनुष्यों में अपने इच्छानुसार पुरुषों और स्त्रियों में संयोग कराना सम्भव नहीं है, इस कारण भी वंशानुक्रम के सम्बन्ध में मनुष्यों पर परीक्षा सम्भव नहीं है। ऐसी स्थिति में एक प्रकार के फलों पर की मक्खियों को लेकर अमेरिका के प्रसिद्ध वैज्ञानिक टी० एच० मॉर्गन महोदय ने लाखों परीक्षाएँ की हैं। इन मक्खियों का वैज्ञानिक नाम **ड्रॉसोफीला** (Drosophila) है। इन्हें पालना बहुत सरल काम है। थोड़े समय में इनके बहुत से बच्चे पैदा होते हैं। इनकी एक-एक पीढ़ी पन्द्रह दिन में समाप्त हो जाती है। ड्रॉसोफीला मेलानोगस्टार (Drosophila Melanogaster) नामक मक्खियों की एक लाख पीढ़ियों का इतिहास मॉर्गन महोदय ने संग्रह किया है। इनके वंशजों में चार सौ प्रकार के मौलिक परिवर्त्तन अर्थात् म्यूटेशन (Mutations) पाये गये हैं। इन मक्खियों में चार श्रेणियों के फ़ैक्टर्स अथवा

जेनि हैं और इनके कोषों में चार जोड़े क्रॉमोसोम अथवा वंश-सूत्र रहते हैं। ड्रॉसोफीला मिरलिस नामक उसी मक्खी की एक और जाति में छः जोड़े क्रॉमोसोम पाये गये हैं और उसी की एक तीसरी जाति 'ड्रॉसोफीला अवस्क्युरा' में पाँच जोड़े क्रॉमोसोम पाये गये हैं। इनमें जितने जोड़े क्रॉमोसोम हैं, उतने ही वंश-लक्षण-बीज के समूह भी अर्थात् जेनि के समूह भी अवश्य होंगे। अर्थात् जातियों की विभिन्नता क्रॉमोसोम के जोड़ों की संख्याओं के भेद पर निर्भर है। बार-बार की सहस्रों प्रकार की परीक्षाओं के परिणाम में यह जान पड़ा है कि प्राणियों में तथा मनुष्यों में भी जितनी विभिन्नताएँ दिखाई देती हैं, उनके मूल में सबसे बड़ा कारण शत-शत प्रकार के वंश-लक्षण-बीज अर्थात् हेरे-डिटरी फ़ैक्टर्स अथवा जेनियों के विभिन्न प्रकार के सम्मिश्रण ही हैं। इस सम्मिश्रण-जनित भेद के साथ मौलिक भेद अर्थात् म्यूटेशन का बहुत बड़ा अन्तर है।

इसके पूर्व हमने यह समझाया है कि कैसे एक कोष द्विखण्डित हो जाता है और उससे दो कोष बन जाते हैं। दो कोषों के बनते समय उनके वंश-सूत्र भी कैसे विभाजित होते हैं, इसे भी हमने समझा दिया है। इसके सम्बन्ध में यहाँ पर कुछ और नवीन बातें बताई जा रही हैं। किसी भी जीव में जितने चारित्रिक लक्षण दिखाई देते हैं, उनके साथ उन जीवों के क्रॉमोसोमों का, अर्थात् वंश-सूत्रों का एक अविच्छेद्य सम्बन्ध है। जैसे, जिस जाति के जीव में पाँच जोड़े क्रॉमोसोम रहते हैं, उस जाति के जीव में चार श्रेणी के चारित्रिक लक्षण पाये जायेंगे। किन्तु मेन्डेल के सिद्धान्तानुसार जीव में जितने फ़ैक्टर्स का होना अर्थात् चारित्रिक लक्षणों का होना सम्भव है, उसमें उतने जोड़े क्रॉमोसोमस् नहीं पाये जाते। इस प्रकार और भी बहुत-सी बातों के कारण वैज्ञानिकों ने इस बात का अनुमान किया है कि क्रॉमोसोम के भी क्षुद्रातिक्षुद्र

अंश हैं जो कि माला के दानों की तरह एकत्र गुथे हुए रहते हैं। इन्हीं क्षुद्रातिक्षुद्र अंशों को जेनि (Gene) कहा गया है। एक कोष के दो कोषों में विभाजित होते समय क्रॉमोसोम अपने क्षुद्रातिक्षुद्र अंशों में टुकड़े-टुकड़े होकर बिखर नहीं जाते; वरन् क्रॉमोसोम अर्थात् वंश-सूत्र के जेनि अर्थात् वंश-लक्षण-बीज सामूहिक रूप में सम्मिश्रित होते हैं। इस सामूहिक रूप से सम्मिश्रित होने को अँगरेज़ी में कपलिंग (Coupling) अथवा लिंकेज (Linkage) कहते हैं। जिन क्रियाओं से ऐसा होता है उन्हें अँगरेज़ी में सिंगल क्रासिंग ओवर (Single Crossing Over), डबल क्रासिङ्ग ओवर (Double Crossing Over) आदि कहते हैं। क्रॉमोसोम के विभाजित होते समय जेनियों के सामूहिक रूप में सम्मिश्रित होने के कारण, माता-पिता और उनकी सन्तानों में कुछ समता और कुछ विषमता दोनों बातें आ जाती हैं। इस क्रासिङ्ग ओवर की प्रक्रिया के कारण कुछ वंश-लक्षण एकत्रित रूप से विकसित होते हैं। जैसे गोरे रङ्ग के साथ त्वचा का भी सूक्ष्म होना प्रायः देखा गया है। ड्रासोफीला में मार्गन महोदय की परीक्षाओं के परिणाम में कई सौ चारित्रिक लक्षण (Mendelising Hereditary Factors) पाये गये हैं, जिनमें चार प्रकार के कपलिङ्ग के दृष्टान्त पाये जाते हैं। ड्रासोफीला के बीज-कोष में केवल चार क्रॉमोसोम हैं। जिस समय भ्रूण-कोष से जीव-कोष और बीज-कोषों की उत्पत्ति होती है, उसी समय लिंकेज और कपलिङ्ग आदि की प्रक्रियाएँ भी होती जाती हैं। इस लिंकेज के कारण ही कभी-कभी ऐसा भी होता देखा गया है कि कोई-कोई रोग तो केवल पुरुष में ही दिखाई देते हैं और कोई-कोई केवल स्त्री में। इसके अतिरिक्त ऐसा भी होता है कि माता-पिता के कुछ रोग लड़की द्वारा ही वंशजों में उत्पन्न होते हैं, पुत्र द्वारा नहीं। इसका भी उल्लेख पहले ही कर

दिया गया है। ऐसा होने का कारण लिंकेज की प्रक्रिया में ही निहित है। हिमोफीलिया एक ऐसा रोग है, जिसमें एक बार देह के किसी स्थान के कट जाने पर रक्त का प्रवाह किसी प्रकार भी बन्द नहीं होता। ऐसे रोगी अधिक दिन जीवित नहीं रहते। जिस जेनि से यह रोग उत्पन्न होता है, उसके केवल एक के प्रभाव से पुरुष में ही यह रोग उत्पन्न होता है, स्त्री में नहीं। किन्तु इस प्रकार के दो जेनि के सम्मिश्रण से स्त्री में भी यह रोग उत्पन्न होता है। हिमोफीलिया रोग-ग्रस्त व्यक्तियों को 'ब्लीडर्स' भी कहते हैं। 'ब्लीडर्स' अपनी माताओं से ही इस रोग को प्राप्त होते हैं; किन्तु ये माताएँ स्वयं इस रोग से मुक्त रहती हैं। यह दोष कई पुश्त तक माता से कन्या एवं उससे उसकी कन्या आदि क्रम से सन्तानों में संक्रमित होता रहता है; किन्तु कन्याएँ रोगग्रस्त न होकर उनके लड़के ही रोगी बनते रहते हैं। पिता से यह रोग पुत्र को प्राप्त होते कभी नहीं देखा गया है। "ब्लीडर्स" अपनी विवाह-योग्य आयु को कदाचित् ही प्राप्त होते हैं। उसके पूर्व ही उनकी मृत्यु हो जाती है। आज तक यह रोग केवल पुरुषों में ही होते देखा गया है। जो नाड़ियाँ इस रोग को अपनी देह में वहन करती हैं उन्हें 'कंडक्टर्स' (Conductors) कहते हैं। यह रोग सब प्रदेशों में नहीं दिखाई देता। अमेरिका के संयुक्त राष्ट्र में भी जब कभी यह रोग दिखाई दिया, तब यही देखने में आया कि जिन परिवारों में यह रोग उत्पन्न हुआ, उन परिवारों का सम्बन्ध युरोप से ही रहा।* कहा जाता है, महारानी विक्टोरिया की देह में इस रोग का बीज था।

——

* देखिए,—Human Heridity—Pt. 345-347,

चौथा परिच्छेद

लिङ्गभेद का रहस्य

(१)

यौन आकर्षण—पुरुष और नारी—मनुष्य-जन्म से बढ़कर कोई दूसरी अधिक रहस्यपूर्ण बात इस संसार में नहीं है। इसके बाद ही अन्य विस्मयजनक वस्तु लिङ्गभेद का प्रश्न है। पुरुष और नारी में जो रहस्यपूर्ण प्रभेद हैं, उनसे मनुष्य दङ्ग रह जाता है। पुरुष और नारी के बीच इतना मोहक आकर्षण न जाने क्यों है! पुरुष नारी को जानता है, पहचानता है, किन्तु उसके बारे में मनुष्य के मन में रहस्य की सीमा नहीं है। नारी भी पुरुष का साहचर्य पाने के लिए न जाने कितनी उत्सुक रहती है! यौवन की उमङ्गों में दुनिया की माया छिपी हुई है। इसका बहुत कुछ रहस्योद्घाटन आज होने लगा है। किन्तु आश्चर्य की बात तो यह है कि एक रहस्य का उद्घाटन होते ही दूसरा सामने आ जाता है। इस प्रकार ज्ञान के सम्प्रसारण के साथ-साथ हमें, गम्भीर से गम्भीरतर रहस्यों का सामना करना पड़ता है। मनुष्य का जन्म तो एक विस्मय-कर वस्तु है ही; किन्तु यदि हम इस बात पर ध्यान दें कि संसार में पुरुषों और नारियों की संख्या कैसे प्रायः समान है, तो आश्चर्य की सीमा नहीं रहती। यदि पुरुषों से नारियों की संख्या कहीं अधिक हो जाय तो मनुष्य-समाज में न जाने कितनी खलबली मच जायगी! मनुष्य अभी तक अपने इच्छानुसार लड़का अथवा लड़की को जन्म नहीं दे सकता है। किन्तु किस कारण लड़का होता है और किस कारण लड़की, इस रहस्य का कुछ पता चलने लगा है और इसकी भी आशा होने लगी है कि भविष्य में हम लड़का अथवा लड़की के जन्म पर नियन्त्रण कर सकेंगे।

किन्तु संसार में लड़के एवं लड़कियाँ प्राय: समान संख्या में क्यों जन्म लेती हैं, यह बात आज भी रहस्यावृत ही रह गई है।

प्रसिद्ध ग्रीक दार्शनिक प्लेटो ने, ईसा के जन्म से तीन सौ वर्ष पूर्व, यह कहा था कि स्त्री और पुरुष आरम्भ में एक ही व्यक्तित्व में समाये हुए थे; किन्तु देवता की क्रोधाग्नि ने उन्हें अलग-अलग कर दिया था और तब से वे दोनों एक दूसरे के साथ पुन: सम्मिलित होने के लिए चिरलालायित हैं। प्रसिद्ध जीव-वैज्ञानिक अध्यापक क्यू ने कहा है कि यौन आकर्षण की इससे अधिक सुन्दर व्याख्या सम्भव नहीं। हमारे देश के अति प्राचीन शास्त्र मनुस्मृति में भी कहा गया है कि विधाता ने अपनी देह को द्विधा विभक्त करके आधे अंश से पुरुष का एवं दूसरे आधे अंश से स्त्री का सृजन किया है।(मनु० १।३२)

प्राणि-जगत् में ऐसे बहुत से दृष्टान्त प्राप्त हैं जहाँ स्त्री और पुरुष अलग-अलग न रहकर एक ही व्यक्तित्व में समाये हुए रहते हैं। पौधों में भी इसके बहुत से दृष्टान्त मिलते हैं। घोंघे (earth-worm) आदि कीटों में स्त्री और पुरुष अलग-अलग नहीं होते। प्रत्येक घोंघा पुरुष और स्त्री दोनों के ही लक्षण से युक्त होता है। युवावस्था को प्राप्त होते ही वे अपने-अपने साथी को ढूँढ़ते हैं एवं दोनों ही एक दूसरे के गर्भ में सन्तानों को जन्म देते हैं। भोग के समय दोनों ही पुरुष और स्त्री के रूप में व्यवहार करते हैं। और भी निम्न श्रेणी के जीवों में मैथुन के न होते हुए भी जीव की उत्पत्ति होती है, जैसे क्षुद्रतम प्राणी "अमीबा" अथवा रोग-उत्पादक जीवाणु जिन्हें "बैक्टीरिया" कहते हैं। ये एक कोष-विशिष्ट जीव होते हैं। इनकी वंशवृद्धि एक कोष के द्विखण्डित हो जाने पर ही होती है। इन जीवों को न पुरुष ही कह सकते हैं और न स्त्री ही। इसी प्रकार एक कोष-विशिष्ट एक और प्रकार का जीव है जिसमें

लिङ्गभेद का कोई लक्षण वर्त्तमान नहीं है। ये सन्तानोत्पादन के समय एक दूसरे के समीपवर्त्ती होते हैं और तब उन दोनों के बीच जीवित पदार्थों से एक पुल सा बन जाता है। इस पुल के रास्ते से इन दोनों जीवों में कुछ लेन-देन होता है और फिर ये एक दूसरे से अलग हो जाते हैं। एक प्रकार की मछलियाँ होती हैं, जिन्हें अँगरेज़ी में कट्ल फ़िश (Cuttle fish) कहते हैं। इनमें पुरुषों का वीर्य बाहु के रूप में एक नवीन अङ्ग बनाकर उसमें प्रविष्ट होता है। यह नवीन बाहु तब जीव की देह से विच्छिन्न होकर पानी के नीचे चला जाता है और रास्ते में अपनी जाति की स्त्री के मिलते ही उसकी देह में प्रविष्ट हो जाता है। एक प्रकार की झींगा मछली होती है जो पहले पहल तो पुरुष के रूप में रहती है और बाद को स्त्री बन जाती है एवं कुछ दिनों के पश्चात् फिर पुरुष बन जा सकती है। कुछ ऐसे भी जीव होते हैं जिनमें स्त्री और पुरुष दोनों के ही लक्षण वर्त्तमान रहते हैं और वे दूसरे जीव के सम्पर्क में न आकर भी सन्तान को जन्म दे सकते हैं। पुरुष के संसर्ग में न आकर भी बहुत से प्राणी जीवों को जन्म दे सकते हैं। जैसे मधु-मक्षिकाओं में, वीर्य के संस्पर्श में न आकर भी, अण्डों से मक्षिकाओं की उत्पत्ति होती है। ऐसी चिड़ियाँ भी हैं जो पुरुष के संस्पर्श में न आकर भी अण्डे देती हैं और उन अण्डों से जीव उत्पन्न होते हैं। इस प्रक्रिया को अँगरेज़ी में पार्थेनो जेनेसिस (Partheno Genesis) कहते हैं। इन सब दृष्टान्तों से यही प्रतीत होता है कि वंशवृद्धि के लिए पुरुष और स्त्री में यौन सम्बन्ध होने की अनिवार्य आवश्यकता नहीं है। यौन सम्बन्ध होने से ही वंशवृद्धि होती है, ऐसी भी बात नहीं है। प्राणि-जगत् में ऐसे भी दृष्टान्त हैं जहाँ दो जीवों के (प्रधानतः एक-कोष-विशिष्ट जीव) एकत्र

मिलने से एक नवीन जीव की उत्पत्ति होती है। एडिनबरा विश्वविद्यालय के प्रसिद्ध अध्यापक क्र्यू महोदय ने ऊपर दिये गये दृष्टान्तों के आधार पर यह कहा है कि वंशवृद्धि के लिए यौन आकर्षण का होना अत्यावश्यक नहीं है। कुछ वैज्ञानिकों का कहना है कि यौन आकर्षण के द्वारा प्रकृति जीवों की वंशवृद्धि कराती है। क्र्यू साहब इसका विरोध करते हैं। प्रसिद्ध प्राणि-तत्त्व-विद् एलवार्डिस (Alverdes) महोदय ने भी बहुत से दृष्टान्तों का उद्धरण करके यह दिखलाया है कि केवल सन्तानोत्पादन के लिए ही प्राणियों में पुरुषों और स्त्रियों का आकर्षण नहीं हुआ करता।* 'क्र्यू' साहब का कहना है कि यौन आकर्षण क्या वस्तु है, इसका उत्तर विज्ञान आज नहीं दे सकता। ('We do not know what sex is'—F. A. E. Crew in an article on 'sex' in the 'outline of Modern Knowledge') जब बिना मैथुन के भी सन्तान को उत्पत्ति हो सकती है तो यौन आकर्षण की क्या आवश्यकता है? केवल आनन्द के लिए?

नर के संसर्ग में न आकर भी मेढक के बच्चे उत्पन्न हुए हैं। किन्तु मनुष्य के सम्बन्ध में ऐसा एक भी दृष्टान्त प्राप्त नहीं हुआ है। यद्यपि सुश्रुत नामक वैद्यक-ग्रन्थ में यह उल्लेख है कि पुरुष के संस्पश में न आकर भी मातृगर्भ से मनुष्य का जन्म सम्भव है। चूहों के गर्भ की परीक्षा करने पर यह ज्ञात हुआ है कि मैथुन न होने पर भी गर्भस्थ अण्डे से भ्रूण की उत्पत्ति हुई है; किन्तु यह भ्रूण अधिक दिन तक जीवित नहीं रह पाया। इससे इतना तो अनुमान अवश्य किया जा सकता है कि नर-वीर्य के संस्पर्श में न आकर भी चूहे की उत्पत्ति हो सकती है।

---

* देखिए—Social Life in the animal world.

जिन एक-कोष-विशिष्ट जीवों में केवल द्विखण्डित होकर नवीन जीव की उत्पत्ति होती है, उनमें भी यह देखा गया है कि कुछ दिनों के पश्चात् एक कोष से दो कोषों का होना धीरे-धीरे कम होता जाता है। तब फिर दो जीव सम्मिलित होते हैं और इस प्रकार उनमें द्विखण्डित होने की शक्ति पूर्ववत् फिर आ जाती है। इस दृष्टान्त को यथार्थ मान लेने से यह स्वीकार करना पड़ता है कि जीव की उत्पत्ति के लिए मैथुन का भी प्रयोजन है। किन्तु क्रयू साहब कहते हैं कि ऊपर दिये गये दृष्टान्त में कुछ भ्रम है। उपयुक्त आहार के न पाने से ही उक्त जीव में द्विखण्डित होने की शक्ति कम हो जाती थी।

इसके विपरीत मैथुन के परिणाम में जीव की उत्पत्ति नहीं भी हो सकती। मनुष्य में भी ऐसी अवस्था आती है। जब स्त्रियों में रजस्वला होने की शक्ति लुप्त हो जाती है तब मैथुन में आनन्द प्राप्त होने पर भी सन्तान की उत्पत्ति नहीं होती। अर्थात् क्रथू साहब के मतानुसार सन्तानोत्पादन के साथ यौन-संयोग अथवा यौन-आकर्षण का कोई सम्बन्ध नहीं है। किन्तु क्या यह नहीं कहा जा सकता कि जीव की क्रमोन्नति के साथ-साथ उनमें पुरुष और स्त्री के भेदों की भी उत्पत्ति होती है? एक से बहु होना ही तो विकास का नियम है। इस कारण मैथुन से ही जीवों की उत्पत्ति होना उच्चतर विकास का ही लक्षण हो सकता है। एक 'अमीबा' से दूसरे 'अमीबा' के उत्पन्न होने पर कोई विचित्रता नहीं दिखाई देती; किन्तु दो जीवों के मैथुन से उत्पन्न जीवों में नाना प्रकार की विचित्रताएँ दिखाई देती हैं। यह तो एक प्रमाणित वैज्ञानिक तथ्य है। एक से बहुत का होना ही तो सृष्टि है।

मधु-मक्खियाँ अपने बच्चों के आहार का नियन्त्रण करके अपने इच्छानुसार स्त्री अथवा पुरुष अथवा नपुंसक जीव उत्पन्न कर सकती हैं; परन्तु इस बीसवीं शताब्दी में भी मनुष्य अपने इच्छा-

नुसार लड़का अथवा लड़की को जन्म नहीं दे सकता। स्त्री के गर्भ में जिस बच्चे ने जन्म लिया वह लड़का होगा अथवा लड़की, इसके जानने के लिए मनुष्य में उत्सुकता का अन्त नहीं है। परन्तु आज भी विज्ञान इस प्रश्न का निर्णय नहीं कर पाया है। किन्तु इसके सम्बन्ध में कुछ ज्ञान आज हमें अवश्य प्राप्त है। इसके सम्बन्ध में सबसे पहली बात हमें यह प्राप्त हुई है कि पुरुष के वीर्य में दो प्रकार के कोष हैं। एक प्रकार के कोष से पुत्र उत्पन्न होते हैं और दूसरे प्रकार के कोष से कन्याएँ उत्पन्न होती हैं। मनुष्यमात्र के जीव-कोष में २४ जोड़े वंश-सूत्र रहते हैं। इन २४ जोड़ों में २३ जोड़े तो पुरुष और स्त्री में एक-से ही होते हैं; किन्तु चौबीसवें जोड़े में एक विशेष अन्तर दिखाई देता है। पुरुष के जीव-कोष में इस चौबीसवें जोड़े वंश-सूत्र (Chromosome) में से एक वंश-सूत्र अन्य समस्त वंश-सूत्रों से कुछ छोटा होता है। अर्थात् कुल ४८ वंश-सूत्रों में से स्त्री के ४८ और पुरुष के ४७ वंश-सूत्र एक प्रकार के ही होते हैं, किन्तु पुरुष का अड़तालीसवाँ वंश-सूत्र कुछ छोटा और भिन्न होता है। इस छोटे से पुं-वंश-सूत्र के कारण ही स्त्री और पुरुष में इतने प्रभेद उत्पन्न होते हैं। आधुनिक विज्ञान में इस पुं-वंश-सूत्र का नाम 'y' (वाई) रक्खा गया है। पाश्चात्य देशों की समस्त भाषाओं में इसका नाम 'y' ही रक्खा गया है। इस कारण हमें भी इसका नाम 'y' रखना ही उचित होगा।

दूसरे वंश-सूत्रों का नाम 'x' (एक्स्) रक्खा गया है। अर्थात् प्रत्येक स्त्री की देह में केवल 'x' क्रॉमोसोम वंश-सूत्र रहते हैं। अर्थात् XX क्रॉमोसोम से, वंश-सूत्र के जोड़े से, स्त्री की देह बनती है और x y क्रॉमोसोम से, वंश-सूत्र के जोड़े से, पुरुष की देह बनती है। इस प्रकार पुरुष के बीज-कोष में, वीर्य में, दो प्रकार के कोष रहते हैं। एक में केवल 'x' (एक्स्) क्रॉमोसोम वंश-सूत्र

रहते हैं, दूसरे में केवल y (वाई) क्रॉमोसोम वंश-सूत्र रहते हैं। किन्तु स्त्री के बीज-कोष में केवल एक ही प्रकार के कोष होते हैं, जिनमें केवल 'x' (एक्स्) क्रॉमोसोम वंश-सूत्र रहते हैं। पुरुष और स्त्री के 'x' (एक्स्) क्रॉमोसोम वंश-सूत्र एक ही प्रकार के होते हैं। यह बात पहले ही बता दी गई है कि बीज-कोषों में वंश-सूत्र, क्रॉमोसोम, जोड़े-जोड़े में न रहकर प्रत्येक जोड़े के एक-एक वंश-सूत्र रहते हैं। मनुष्य की देह के साधारण कोषों में तो २४ जोड़े अर्थात् ४८ क्रॉमोसोम रहते हैं; किन्तु उसके बीज-कोषों में केवल २४ क्रॉमोसोम रहते हैं, २४ जोड़े नहीं। इस कारण स्त्री के अण्डों में, (अर्थात् बीज-कोषों में) केवल x (एक्स्) क्रॉमोसोम मिलेंगे; किन्तु पुरुष के वीर्य में, बीज-कोषों में कुछ x और कुछ y क्रॉमोसोम मिलेंगे। पुरुष के वीर्य में अर्थात् बीज-कोषों में x और y क्रॉमोसोम-विशिष्ट कोष समान-समान रहते हैं। एक समय निकले हुए पुरुष के वीर्य में लगभग बीस से पचास करोड़ तक बीज-कोष अर्थात् अणुप्रमाण प्राणी रहते हैं। इन बीज-कोषों में आधे x क्रॉमोसोमवाले होते हैं, और बाक़ी आधे y क्रॉमोसोमवाले। आधुनिक विज्ञान के अनुसार केवल एक ही पुं-बीज-कोष एक ही स्त्री अण्डकोष अथवा अण्डाणु में प्रविष्ट हो पाता है। स्त्री के रजस्वला होने के समय उसके डिम्बाशय से केवल एक ही अण्डकोष अथवा अण्डाणु मुक्त होता है और जरायु की ओर बढ़ता है। रास्ते में पुं-बीज-कोषों के मिल जाने पर पुरुष का भी केवल एक ही कोष उस अण्डे में प्रवेश कर पाता है। ये सब बातें पहले ही बता दी गई हैं। पाठकों की सुविधा के लिए उन्हें फिर यहाँ दुहराया जा रहा है। इन सब बातों को ध्यान में रखने से पाठक अनायास ही यह समझ सकेंगे कि यदि स्त्री के अण्डे में पुं-बीज-कोष के एक्स् क्रॉमोसोम वहन करनेवाला कोष प्रविष्ट होता है, तो भ्रूण कन्या होता है। क्योंकि स्त्री के अण्डाणु

में एक्स् क्रॉमोसोम के साथ पुं-बीज-कोष के x क्रॉमोसोम मिलकर भ्रूण के कोष में दो एक्स क्रॉमोसोम बनते हैं। दो एक्स् क्रॉमोसोम से स्त्री की देह बनती है और यदि पुं-वीर्य से वाई क्रॉमोसोम वहन करनेवाला कोष स्त्री के अण्डाणु में अर्थात् बीज-कोष में प्रविष्ट होता है तो भ्रूण बालक-लक्षण-विशिष्ट होता है। कारण इस भ्रूण में एक x क्रॉमोसोम के साथ दूसरा y क्रॉमोसोम मिलता है, अर्थात् भ्रूण में xy (एक्स् वाई) क्रॉमोसोम बनते हैं। xy क्रॉमोसोम-विशिष्ट जीव पुं-लक्षण-विशिष्ट होता है। अर्थात् पुं-बीज-कोष के साथ स्त्री-बीज-कोष के सम्मिलित होते समय ही यह निश्चित हो जाता है कि भ्रूण लड़का होगा अथवा लड़की। पाठक यह भी ध्यान में रक्खेंगे कि पुं-बीज-कोष ही यह निर्णय करता है कि भ्रूण लड़का होगा अथवा लड़की। एक बार भ्रूण बन जाने के पश्चात् फिर उसका लिङ्ग-परिवर्त्तन करना असम्भव सी बात है। अवश्य इसमें भी बहुत कुछ रहस्य छिपा हुआ है। यथास्थान इसका उल्लेख किया जायगा।

यहाँ एक बात पर और विचार करना रह गया है। यह निर्णय कैसे होगा कि स्त्री के अण्डाणु में x क्रॉमो-सोमवाला पुं-बीज-कोष प्रवेश करेगा अथवा y क्रॉमोसोमवाला? भ्रूण का लड़का अथवा लड़की होना तो इसी बात पर निर्भर करता है।

इस विषय पर आधुनिक विज्ञान निश्चयात्मक रूप से कुछ नहीं कह पाया है। "हफैकर" नामक एक वैज्ञानिक ने सन् १९२३ ई० में एवं "सैडलर" नामक एक दूसरे वैज्ञानिक ने सन् १९३० ई० में स्वतन्त्र रूप से प्रमाणित करने की चेष्टा की है कि यदि माता से पिता की आयु अधिक होती है तो सन्तान अधिकतर बालक होते हैं और यदि माता की आयु पिता से

अधिक होती है तो अधिकांश समय कन्याएँ ही उत्पन्न होती हैं। इस सिद्धान्त की पुष्टि भी होती है और इसके विरोध में भी बहुत से दृष्टान्त प्राप्त होते हैं। इसी प्रकार कुछ और भी बातें कही गई हैं, जिनका वैज्ञानिक समाधान अभी तक नहीं हो पाया है।

ऐसा अनुमान किया जाता है कि बाहरी कारणों से लिङ्ग का निर्णय नहीं होता है। इस बात का एक प्रमाण यहाँ दिया जाता है। मनुष्यों में कभी-कभी यमज (एक साथ जन्म लेनेवाले दो बच्चों के जोड़े को यमज सन्तान कहते हैं) सन्तान उत्पन्न होती हैं। यमज सन्ताने दो प्रकार की होती हैं—एक तो जब स्त्री के एक अण्डाणु से ही यमज उत्पन्न होते हैं, दूसरा जब दो अण्डाणुओं में दो पुं-बीज-कोष प्रवेश करते हैं, तब अन्य प्रकार की यमज सन्तानें उत्पन्न होती हैं। पहले प्रकार की यमज सन्तानें आकृति एवं प्रकृति में एक दूसरी से अद्भुत प्रकार से मिलती हैं; किन्तु दूसरे प्रकार की यमज सन्तानों में वैसा ही मेल रहता है जैसा कि भाई-भाई में और भाई-बहनों में रहता है। पहले प्रकार की यमज सन्तान को अँगरेज़ी में आइडेंटिकल ट्वीन्स (Identical twins) कहते हैं और दूसरे प्रकार के यमज को फ़्रैटरनल ट्वीन्स (Fraternal twins) कहते हैं। Identical twins के लिङ्ग एक ही प्रकार के होते हैं; किन्तु Fraternal twins के लिङ्ग एक प्रकार के हो सकते हैं और नहीं भी हो सकते हैं। यदि बाहरी कारणों से लिङ्ग का निर्णय होता हो तो आइडेंटिकल यमज सन्तानों के लिङ्ग सदा एक प्रकार के कैसे हो सकते हैं? यह भी तो समझने की बात है कि जब दो स्त्री अण्डाणु से यमज सन्तान उत्पन्न होती हैं, तब उनके लिङ्ग कभी तो एक ही प्रकार के होते हैं और कभी नहीं भी होते। इस प्रमाण से यह सिद्ध

होता है कि गर्भ-धारण के समय ही भ्रूण का लिङ्ग निश्चित हो जाता है।

जिस जोड़े क्रॉमोसोम में पुरुष और स्त्री में भेद पाया जाता है, उस जोड़े क्रॉमोसोम को सेक्स क्रामोसोम्स (Sex-chromosomes) कहते हैं; अवशिष्ट क्रामोसोम को ऑटोसोम्स (antosomes) कहते हैं। सेक्स् क्रॉमोसोम्स में एक x होता है, दूसरा y वाई।

लड़कियों की अपेक्षा लड़के अधिक जन्म लेते हैं—संसार में देखा गया है कि लड़कियों की अपेक्षा लड़के अधिक संख्या में जन्म लेते हैं। जब पुरुष के वीर्य में x और y क्रॉमोसोम बराबर-बराबर रहते हैं तब लड़कियों की अपेक्षा लड़के क्यों अधिक जन्म लेते हैं? इस प्रश्न का भी आज तक निर्णय नहीं हो पाया है। एक और बात यह भी पाई गई है कि गर्भावस्था में ही यदि बहुत से पुं-भ्रूण नष्ट न हो जाते तो संसार में स्त्रियों की अपेक्षा पुरुषों की संख्या कहीं अधिक हो जाती। वैज्ञानिकों का कहना है कि गर्भ-धारण के समय लड़कों की संख्या लड़कियों की अपेक्षा प्रतिशत २० से ५० तक अधिक होती है। सम्भव है इस गणना में कुछ भ्रम हो, तथापि इसमें कोई सन्देह नहीं कि लड़कियों की अपेक्षा लड़के अधिक जन्म लेते हैं।

तीन मास की अवस्था के भ्रूण के लिङ्ग-लक्षण पहचाने जा सकते हैं। जितने भ्रूण नष्ट हो जाते हैं, उनकी परीक्षा करने पर यह जाना गया है कि पुं-लक्षण-विशिष्ट नष्ट भ्रूणों की संख्या स्त्री-लक्षण-विशिष्ट नष्ट भ्रूणों की अपेक्षा दुगुनी होती है। इससे यह अनुमान किया जाता है कि लड़कियों की अपेक्षा लड़कों में जीवनी-शक्ति कम होती है। साधारण व्यक्ति की यह धारणा है कि लड़कियाँ लड़कों से दुर्बल होती हैं; किन्तु

वैज्ञानिकों के मतानुसार लड़कियों से अधिक दुर्बल लड़के ही होते हैं।

तीन मास की अवस्था में जितने गर्भ नष्ट होते हैं, उनकी परीक्षा करने पर यह ज्ञात हुआ है कि उक्त नष्ट भ्रूणों में यदि एक भ्रूण स्त्री-लक्षण-विशिष्ट होता है तो चार पुरुष-लक्षण-विशिष्ट होते हैं। चतुर्थ मास की अवस्था में नष्ट भ्रूणों की परीक्षा करने पर देखा गया है कि स्त्री-लक्षण-युक्त भ्रूणों की अपेक्षा पुरुष-लक्षण-युक्त भ्रूणों की संख्या दुगनी होती है। पञ्चम मास में स्त्री की संख्या यदि १०० होती है तो पुरुष की संख्या १४५ होती है। नवें मास में स्त्री की संख्या १०० होती है तो पुरुष की संख्या १४० होती है।

इस प्रकार जन्म के पूर्व, लड़कियाँ लड़कों से अधिक जीवनी-शक्ति-सम्पन्न होती हैं। जन्म के पश्चात् भी समयानुसार स्त्रियों की अपेक्षा पुरुषों की अधिक संख्या में मृत्यु होती रहती है। इँगलैण्ड में ८० वर्ष की अवस्था में पुरुषों और स्त्रियों की तुलना करने पर ज्ञात हुआ है कि स्त्रियाँ पुरुषों की अपेक्षा दुगनी पाई जाती हैं।

जीवित बच्चों के जन्म की परीक्षा करने पर देखा गया है कि प्रतिशत लड़कियों के साथ १०३ लड़के जन्म लेते हैं।

ऐसा भी अनुमान किया जाता है कि माता का स्वास्थ्य अच्छा होने से अधिक सम्भावना यही रहती है कि बच्चा लड़का हो। परन्तु हमें स्मरण रखना चाहिए कि विज्ञान अभी तक इस प्रश्न का उत्तर नहीं दे पाया है।

यहाँ पर एक और रहस्यपूर्ण बात का उल्लेख कर देना उचित होगा। यह तो प्रमाणित हो चुका है कि पुरुष के वीर्य में दो प्रकार के बीज-कोष हैं—एक जिनमें y क्रॉमोसोम रहते हैं, दूसरे जिनमें x क्रॉमोसोम रहते हैं। अब यह

चेष्टा हो रही है कि पुरुष के बीज-कोषों को अलग से जीवित रक्खा जाय और उनमें से y और x क्रॉमोसोमवाले बीज-कोषों को भी अलग कर लिया जाय। ये बीज-कोष फिर समय और सुविधा के अनुसार स्त्री के गर्भाशय में डाले जा सकते हैं। इस प्रकार अपने इच्छानुसार लड़का अथवा लड़की को हम जन्म दे सकते हैं। ये सब काल्पनिक बातें नहीं हैं। आजकल विदेशों में इन सब बातों की परीक्षाएँ हो रही हैं।

इसके अतिरिक्त एक और भी विस्मयकर बात की परीक्षा हो रही है। चूहों पर इसकी परीक्षा हुई है। मादा-चूहों के गर्भ से गर्भाशय अर्थात् जरायु को निकालकर अलग जीवित रक्खा जाता है; और नर चूहों से वीर्य को लेकर भी अलग जीवित रक्खा जाता है। गर्भ रहने के बाद भी मादा चूहे के पेट से बच्चा समेत गर्भाशय को बाहर निकालकर अलग जीवित रखने की चेष्टा हो रही है। सन् १९०१ ई० में वैज्ञानिक 'हीप' (Heape) महोदय एक मादा खरगोश के पेट से बच्चा समेत गर्भाशय को दूसरी मादा खरगोश के पेट में डालने में समर्थ हुए थे। सन् १९२५ ई० में प्रसिद्ध वैज्ञानिक 'हॉलडेन' (Haldane) महोदय ने चुहिया के पेट से बच्चा समेत गर्भाशय बाहर निकालकर दस दिन तक जीवित रक्खा था। गर्भाशय में बच्चे के लिए उपयुक्त आहार पहुँचाना एक भारी समस्या है। इस समस्या के हल हो जाने पर माँ के पेट से बाहर रहते हुए ही जैसे गर्भाशय से जीवित चूहे का निकलना सम्भव है, इसी प्रकार मनुष्यों में भी माँ के पेट से गर्भाशय को अलग निकालकर, स्वतन्त्र रूप से, अपने इच्छानुसार बच्चा पैदा करने की आशा वैज्ञानिकगण आज करने लगे हैं। जैसे आज हम मुर्गी के अण्डे को यन्त्र में रखकर बच्चे पैदा कर लेते हैं, उसी प्रकार भविष्य में वैज्ञानिकगण पुरुष के वीर्य को अलग संग्रह करके और स्त्री के

पेट से जरायु को अलग निकालकर, मुर्गी के अण्डों की तरह मनुष्यों के बच्चों को भी, यन्त्र की सहायता से उत्पन्न किया करेंगे*। इस प्रक्रिया को वैज्ञानिक परिभाषा में (Ectogenesis) एक्टोजेनेसिस कहते हैं।

आजकल यूनाइटेड् स्टेट्स आफ़ अमेरिका में ऐसे गुप्त स्थान हैं, जहाँ पुरुष का वीर्य-संग्रह किया जाता है एवं प्रयोजनानुसार स्त्री के गर्भ में उसे डाला जा सकता है। कालेज के चुने हुए ग्रेजुएट युवकों से वीर्य संग्रह किया जाता है। इनके नाम अथवा परिचय गुप्त रक्खे जाते हैं। मान लीजिए कि पुरुष के दोष से स्त्री के सन्तान न हो रही हो तो उस दशा में पूर्वोक्त गुप्त स्थान से चुने हुए सुन्दर, विद्वान्, स्वस्थ युवक के वीर्य से स्त्री को गर्भाधान किया जा सकता है। न्यूयार्क में ऐसा ही एक गुप्त स्थान है।

गृहपालित पशु आदि के बारे में अब उक्त बात केवल परीक्षागारों में ही सीमित नहीं है। आजकल पशुओं पर इस विज्ञान का यथेष्ट प्रयोग होने लगा है। अच्छे-अच्छे चुने हुए साँड़ों से वीर्य संग्रह करके उसे रेफ़्रिजारेटरों में (Refrigerators= जहाँ ताप की मात्रा इच्छानुसार क़ायम रक्खी जा सकती है) सँभालकर रक्खा जाता है और आवश्यकतानुसार चुनी हुई गाय को गर्भवती किया जाता है। योरप और अमेरिका के बहुत से प्रदेशों में इस विज्ञान का प्रयोग होने लगा है। दक्षिण अमेरिका से चुने हुए साँड़ों का वीर्य हवाई जहाज़ द्वारा युनाइटेड् स्टेट्स आफ़ अमेरिका में लाया जाने लगा है। इस प्रकार कृत्रिम

---

* देखिए--Daedalus or Science and the Future by J. B. S. Haldane seventh edition Pp. 63 and 64.

गर्भाधान की प्रक्रिया को वैज्ञानिक भाषा में ऑयटेलेजेनेसिस (Eutelegenesis) कहते हैं।*

(२)

अर्द्धनारीश्वर—आधा पुरुष और आधा नारी—प्रायः समाचारपत्रों में ख़बर छपती है कि एक युवती की देह में पुरुष के लक्षण दिखाई देने लगे और बाद को चिकित्सालय में अस्त्रोपचार (चीर-फाड़) के पश्चात् वह पुरुष बन गई। इसी प्रकार ऐसे भी दृष्टान्त प्राप्त हैं जहाँ लड़का लड़की के रूप में परिवर्त्तित हो गया है। इसके अतिरिक्त बहुतों ने यह भी देखा होगा कि कभी-कभी पुरुष की देह में नारी के चिह्न विकसित होते हैं; जैसे—किसी-किसी पुरुष के स्तन युवतियों की तरह उच्च एवं स्फीत होते हैं। इसी प्रकार कभी-कभी युवतियों के भी मूँछें निकल आती हैं। पाठकों को यह सुनकर आश्चर्य होगा कि वर्त्तमान समय में ऐसे मनुष्य भी हैं, जिनमें पुरुष और स्त्री दोनों के लक्षण एक ही साथ उपस्थित हैं। स्त्रीत्व और पुरुषत्व के लक्षण, पुरुष और स्त्री दोनों में ही पाये जाते हैं। किसी में कोई लक्षण परिपूर्ण रूप से प्रस्फुटित होता है और किसी अन्य में दूसरे लक्षण अधिक प्रस्फुटित होते हैं। पुरुष की देह में स्तन के स्पष्ट चिह्न वर्त्तमान हैं, किन्तु वे स्तन का काम नहीं देते। स्त्रियों में भी पुरुष का लिङ्ग सूक्ष्म रूप से वर्त्तमान है, जिसका अँगरेज़ी नाम क्लाइटॉरिस (Clitoris) है। कभी-कभी स्त्रियों में स्त्रीत्व के लक्षण तो अर्द्ध-परिस्फुट होकर ही रह जाते हैं और साथ ही पुरुष के लक्षण भी उनमें सूक्ष्म

---

* देखिए--Yon and Heredity—by Amram Scheinfeld P. 390, 391.

रूप से पाये जाते हैं। इस विषय पर जॉन हप्किन्स् विश्वविद्यालय के अध्यापक ह्यु हैमटन यङ्ग (Hugh Hampton Young) महोदय ने विस्तृत विवरणयुक्त एक पुस्तक लिखी है। उनका कहना है कि उनके पास बीस ऐसे स्पष्ट दृष्टान्त हैं, जिनके बारे में यह निश्चयात्मक रूप से कहा जा सकता है कि उनका देह में पुरुष और नारी दोनों के चिह्न वर्तमान हैं। उनमें स्त्री के अण्डाणु और पुरुष के अण्डकोष (Both Ovaries and Testicles) दोनों एकत्र पाये गये हैं।

इसके अतिरिक्त दूसरे अपेक्षाकृत अधिक ऐसे दृष्टान्त मिलते हैं, जहाँ एक ही व्यक्ति में या तो स्त्री के अण्डाणु (स्त्री बीज-कोष, जो अण्डे के रूप में होते हैं) अथवा पुरुष के अण्ड-कोष (Testicles) पाये गये हैं; किन्तु उस व्यक्ति में बाह्यतः नर और मादा दोनों के ही लक्षण एक साथ विकसित होते दिखाई देते हैं, जिनमें से केवल एक लक्षण तो दूसरे लक्षण से अधिक परिस्फुट होते देखा गया है। उन अधिक परिस्फुट लक्षणों के कारण हम उसे लड़का अथवा लड़की कहते हैं। परीक्षाओं के परिणाम में ऐसा अनुमान किया जाता है कि प्रति सहस्र मनुष्यों में से एक मनुष्य में उपर्युक्त उभय लक्षण एकत्र दिखाई देते हैं। अर्थात् जन्म के समय वंशानुक्रम के नियमानुसार कोई व्यक्ति तो यथार्थ में पुरुष अथवा नारी होकर ही जन्म लेता है जिसमें केवल स्त्री अण्डाणु अथवा पुं-अणु-कोष रहते हैं; किन्तु अयथार्थ वाह्य लक्षणों के कारण भ्रम-वश ऐसा समझा जाता है कि वह लड़का है अथवा लड़की है। ऐसे दृष्टान्त आजकल मिलने लगे हैं जहाँ पर एक विशेष युवती खेल-कूद में अत्यधिक पारदर्शिता दिखाती है; किन्तु सहसा उसी की देह में ऐसे लक्षण दिखाई देने लगते हैं, जिनके कारण चिकित्सालय में जाकर उसे आपरेशन कराना पड़ता है और चिकित्सालय से निकलकर वह युवती युवक

बन जाती है। उसकी देह में स्त्री के लक्षण अपरिस्फुट एवं अपूर्ण थे। उन चिह्नों को चिकित्सक की सहायता से कटवा डाला गया था।

विज्ञान की परिभाषा में यह नहीं कहा जा सकता कि कोई एक व्यक्ति परिपूर्ण रूप से पुरुषत्व अथवा स्त्रीत्व के लक्षणों से युक्त होता है। किसी में तो पुरुष बनने की और किसी में स्त्री बनने की सम्भावना प्रबल रहती है। संभव है भ्रूण के विकसित होते समय, सृष्टि-प्रवाह को जारी रखने के लिए, प्रकृति देवी अपने रहस्यमय उपायों से किसी को तो पुरुष बना देती है और किसी को स्त्री।

बङ्गाल के एक धार्मिक सम्प्रदाय का नाम 'सहजिया' सम्प्रदाय है। इस सम्प्रदाय के मतानुसार प्रत्येक पुरुष में नारीत्व के भाव भी हैं और प्रत्येक नारी में भी पुरुषत्व के भाव हैं। पुरुष में पुरुषत्व का भाव प्रबल है, इसलिए वह पुरुष है और नारी में नारीत्व का भाव प्रबल है, इसलिए वह नारी है। वे पुरुष के आधे वाम अङ्ग को नारी-स्वभाव-विशिष्ट मानते हैं और स्त्री के दक्षिण अङ्ग को पुरुष-स्वभाव-विशिष्ट। यह प्रायः देखा गया है कि स्त्री का वाम स्तन दक्षिण स्तन से अधिक परिपुष्ट होता है। पुरुष का भी दक्षिण अङ्ग वाम अङ्ग से प्रायः अधिक बलिष्ठ एवं कर्मठ होता है।

हिन्दुओं के पौराणिक ग्रन्थों में भी सृष्टि-क्रम के सम्बन्ध में अमैथुनी सृष्टि का उल्लेख किया गया है। न्याय-कुसुमाञ्जलि में भी इस बात का उल्लेख है। हिन्दुओं के देवाधिदेव महादेव शिव को अर्द्धनारीश्वर कहा गया है। इसका आध्यात्मिक तात्पर्य भी है और पार्थिव दृष्टि से भी इसका एक तात्पर्य यह है कि सृष्टि द्वन्द्वात्मक है। प्रत्येक वस्तु में दोनों भाव एकत्र रहते हैं। केवल किसी एक भाव के प्रबल होने से उस वस्तु का, उस प्रबल भाव के नाम के आधार पर, यह नाम पड़ता है। इन दोनों भावों के पारस्परिक

विकास के अनन्त भेद हैं। आधुनिक विज्ञान से भी यह पता चलता है कि स्त्री और पुरुषत्व के विकास में भी अनन्त विभेद हैं। जहाँ यह भेद अति सूक्ष्म है वहाँ स्थूलत: कोई भेद दिखाई नहीं देता; किन्तु जहाँ भेद अधिक हो जाता है वहाँ स्थूल दृष्टि से भी हम उसे देख पाते हैं।

वंशानुक्रम-विज्ञान के अनुसार स्त्री और पुरुष के लिङ्ग-भेद के विषय में बहुत बातें जानने योग्य हैं। हम इस बात से अवश्य परिचित हो गये हैं कि प्रधानत: 'जेनि' के द्वारा ही वंश के लक्षण वंशजों में आते हैं। हमने यह भी देखा है कि पुं-जीवकोष में x, y क्रॉमोसोम रहते हैं, और स्त्री-जीव-कोष में केवल x, x क्रॉमोसोम रहते हैं। किन्तु इस नियम के प्रतिवाद भी पाये गये हैं। जिन जेनियों के द्वारा स्त्रीत्व और पुरुषत्व के लक्षण विकसित होते हैं, वे केवल x, अथवा केवल y क्रॉमोसोम में ही सीमित नहीं रहते। x और y क्रॉमोसोम में केवल स्त्रीत्व अथवा केवल पुरुषत्व के वंश-लक्षण-बीज अर्थात् 'जेनि' ही नहीं रहते, प्रत्युत उनमें दूसरे अनेक प्रकार के लक्षणों के उत्पन्न करनेवाले 'जेनि' भी रहते हैं। इसी प्रकार दूसरे क्रॉमोसोमों में भी स्त्री और पुरुष के लक्षण उत्पन्न करनेवाले जेनि भी रहते हैं अर्थात् केवल x अथवा केवल y क्रॉमोसोम द्वारा ही लिङ्ग-भेद की उत्पत्ति नहीं होती है। लिङ्ग-भेद की उत्पत्ति के लिए समस्त क्रॉमोसोमों के सब जेनियों का सम्मिलित प्रभाव काम करता है। इसके पूर्व "लिउकेमिया" नामक रोग के सम्बन्ध में इस विषय पर चर्चा की गई थी। लिङ्ग-भेद के सम्बन्ध में भी वही बात लागू है।

x और y क्रॉमोसोम में ऐसे 'जेनि' अवश्य हैं, जिनके अधिनायकत्व में, भ्रूण में लिङ्ग के लक्षण विकसित होते हैं। परन्तु लिङ्ग-लक्षण के विकसित होने में और भी रहस्य की बातें छिपी हुई हैं। भ्रूण में प्रथम अवस्था में दो अति सूक्ष्म ग्रन्थियाँ

रहती हैं। प्राथमिक अवस्था में ये न तो स्त्री के डिम्बाणु की तरह होती हैं और न पुरुष के अण्ड-कोष की तरह। विकसित होते समय भ्रूण को यदि पुरुष बनना है तो वे सूक्ष्म ग्रन्थियाँ पुरुष के अण्ड-कोष बन जाती हैं, और उनसे जो रस निकला करता है उसके प्रभाव से पुरुष के दूसरे लिङ्ग-लक्षण विकसित होने लगते हैं। और यदि भ्रूण को स्त्री बनना है तो उक्त ग्रन्थियाँ स्त्री के डिम्बाणु बन जाती हैं और उनसे दूसरे प्रकार के रस निर्गत होते हैं। इन ग्रन्थियों के साथ दो नल युक्त रहते हैं। इनमें से एक का नाम "मुलेरियन्" (Mullerian) और दूसरे का नाम है "वलफ़ियन्" (Wolfian) डक्ट अथवा नल। जब भ्रूण में स्त्री-लिङ्ग के लक्षण विकसित होते हैं तब 'मुलेरियन्' नल जरायु आदि में परिणत हो जाता है तथा 'वलफ़ियन्' नल शुष्कप्राय हो जाता है और जब भ्रूण में पुं-लिङ्ग के लक्षण विकसित होने लगते हैं तब 'मुलेरियन्' नल विकसित न होकर शुष्कप्राय रह जाता है एवं 'वलफ़ियन्' नल पुरुष का वीर्यवाही नल बन जाता है। स्त्री में 'वलफ़ियन्' नल शुष्कप्राय रह जाते हैं।

ऊपर बताई गई ग्रन्थियों का पारिभाषिक नाम गोनेड्स् या सेक्स ग्लाण्ड्स् (Gonads or Sex Glands) है। लिङ्ग-भेद के उत्पन्न होने में पहले x अथवा y क्रॉमोसोम का प्रभाव रहता है। ये प्रभाव वंशानुक्रम के नियमानुसार प्राप्त होते हैं। इसके साथ-साथ 'गोनेड्स्' के रसप्रवाह का भी अत्यन्त महत्त्व-पूर्ण प्रभाव लिङ्ग-भेद के कारण के रूप में वर्त्तमान है। जब 'सेक्स ग्लाण्ड्स्' के रसप्रवाह के साथ x अथवा y क्रॉमो-सोम का सामञ्जस्य रहता है तब स्वाभाविक रूप से पुरुष अथवा स्त्री उत्पन्न होती है; अन्यथा नाना प्रकार की विचित्रताएँ उत्पन्न होती हैं। 'सेक्स ग्लाण्ड्स्' से जो रस निकलता है, उसका पारि-भाषिक नाम 'सेक्स हरमोन्स्' है।

सेक्स हरमोन्स्—'सेक्स ग्लाण्ड्स' का रस एक विस्मय की वस्तु है। यदि किसी मुर्ग़ के अण्डकोष निकाल लिये जाते हैं, तो मुर्ग़ का चीख़ना बन्द हो जाता है। उसके मस्तक पर का रङ्गीन मांसपिण्ड शुष्क होने लगता है और उसका रङ्ग फीका पड़ जाता है। किन्तु यदि उस मुर्ग़ की देह में दूसरे मुर्ग़ के जीवित अण्ड-कोष रख दिये जाते हैं तो वह फिर पूर्ववत् बाँग देने लगता है एवं उसमें दूसरे पुरुषत्व के लक्षण दिखाई देने लगते हैं। यदि किसी मादा-चूहे के पेट से अण्डाणुओं को निकाल लिया जाता है, तो उसमें कामोद्दीपना नहीं रह जाती एवं वह नर को पास नहीं आने देती। किन्तु यदि उस चूहे की देह में स्त्री-अण्डाणु का रस अर्थात् स्त्री-हॉरमोन इन्जेक्ट (Inject) कर दिया जाता है तो उसमें फिर पूर्ववत् कामोद्दीपना होने लगती है, फिर वह नर-चूहे को पास आने देती है आदि, आदि।

इसी प्रकार जब किसी पुरुष की देह से अण्डकोष निकाल लिये जाते हैं और उसमें यदि स्त्री-'हॉरमोन' इन्जेक्ट किया जाता है तो उस पुरुष का लिङ्ग शुष्क और छोटा होने लगता है। इसके साथ-साथ उसकी देह में स्त्रियों के से स्तन विकसित होने लगते हैं और वह बच्चों को दूध पिला सकता है। स्त्री की देह से भी जब अण्डाणु निकाल लिये जाते हैं, एवं उसकी देह में पुं-'हॉरमोन्' इन्जेक्ट किया जाता है तो उसके स्तन शुष्क होने लगते हैं और उसका क्लाइटारिस पुरुष-लिङ्ग की तरह विकसित होने लगता है। (क्लाइटारिस का परिचय हम पृष्ठ ७४ में दे आये हैं।)

जीव की देह में जो कोष हैं उनमें पुरुष अथवा स्त्री, दोनों लक्षणों के विकसित होने की बराबर-बराबर सम्भावनाएँ रहती हैं। 'सेक्स हॉरमोन' के प्रभाव से स्त्री अथवा पुरुष के लक्षणों में उनका परिवत्तन हो सकता है।

इन सब बातों से यह प्रतीत होता है कि लिङ्ग-भेद के मूल में जेनि, x अथवा y क्रॉमोसोम, एवं 'सेक्स हॉरमोन्स्' अर्थात् 'सेक्स ग्लाएड' का रस-प्रवाह सामूहिक रूप से काम करता है। इन सब के समन्वय से तो स्वाभाविक रूप से स्त्री अथवा पुरुष का विकास होता है। जब इन मूल कारणों में परस्पर विरोध उत्पन्न हो जाता है तो प्रकृति में विचित्रता दिखाई देने लगती है।

कुछ निम्न श्रेणी के प्राणियों में स्वाभाविक रीति से ही किसी एक ही व्यक्ति में उभय लिङ्ग अभिव्यक्त होते हैं। वे एक ही समय में अथवा समयान्तर में स्त्री एवं पुरुष दोनों के से ही व्यवहार करते हैं। इस श्रेणी के जीवों को "हरमा फ्रोडाइट्स" (Herma Phrodites) कहते हैं। इसके अतिरिक्त ऐसे भी प्राणी हैं, जिनमें आधी देह तो स्त्री-लक्षण-युक्त होती है और दूसरी आधी में पुरुष के लक्षण विकसित होते हैं। ऐसे जीवों को "गीनैन्ड्रोमार्फस्" (Gynandromorphs) कहते हैं। ड्रासोफीला नामक मक्खियों में आधी देह पुरुष की और आधी स्त्री की पाई गई हैं। संसार में इस प्रकार के और भी बहुत से प्राणी पाये जाते हैं।

मनुष्यों में यौवनावस्था का प्रारम्भ हो जाने के पश्चात् यदि स्त्री की देह से अण्डाणुओं को निकाल लिया जाय तो उसमें विशेष परिवर्त्तन के लक्षण नहीं दिखाई देते। किन्तु यदि यौवना-वस्था के पूर्व ऐसा किया जाता है तो अवश्य मनुष्यदेह में भी परिवर्त्तन दिखाई देने लगते हैं। यौवनावस्था के पूर्व लड़की की देह में स्त्रीजनोचित लक्षण विकसित नहीं होते। इस कारण यदि उस अवस्था में लड़की की देह से अण्डाणु को निकाल लिया जाता है, तो यौवनावस्था आने पर उसकी देह में पुरुष के कुछ-कुछ लक्षण दिखाई देने लगते हैं। इसी प्रकार यदि यौवनावस्था के पूर्व लड़के के अण्ड-कोष निकाल लिये जाते हैं तो यौवनावस्था

आने पर उस लड़के में स्त्रीजनोचित स्वभाव एवं देहावयव विकसित होने लगते हैं। ऐसे लड़के के मूँछें नहीं निकलतीं; गले का स्वर स्त्रियों का सा हो जाता है, आदि-आदि।

इस स्थान पर एक बात का स्पष्ट उल्लेख कर देना नितान्त आवश्यक है। यौवनावस्था के प्राप्त होने पर 'गोनेड्स्' अर्थात् 'सेक्स् ग्लैण्ड्स्' के निकाल लेने पर भी मनुष्य की देह पर लिङ्ग के सम्बन्ध में कुछ विशेष परिवर्त्तन नहीं होते। दूसरे पुरुषों की तरह हिजड़े भी रतिक्रिया कर सकते हैं।*

'सेक्स ग्लैण्ड्स' के तीव्र रसप्रवाह के कारण कभी-कभी दो अथवा तीन वर्ष के बच्चों में भी लिङ्ग-लक्षण परिपूर्ण रूप से विकसित होते हुए देखा गया है। इन्हीं ग्रन्थियों के रसप्रवाह एवं जेनियों के कारण मनुष्यजाति के सब व्यक्तियों में ही प्राय: एक ही समय में यौवन के लक्षण दिखाई देते हैं। संसार भर में सब देशों की स्त्रियों में प्राय: एक ही समय में ऋतु-स्राव बन्द हो जाता है।

सेक्स ग्लैण्ड्स् के रसप्रवाह से ही भ्रूण के लिङ्ग-लक्षण तथा उसकी पुरुष अथवा स्त्रीजनोचित प्रकृति विकसित होती है। किन्तु सेक्स ग्लैण्ड्स् के रसप्रवाह का नियन्त्रण कैसे होता है, अथवा जो ग्रन्थियाँ सेक्स ग्लैण्ड्स् के रूप में बदलती हैं, उनका नियन्त्रण किन नियमों के अनुसार होता है इसका ज्ञान अभी तक हमें नहीं है।

हमने अभी तक जो कुछ लिखा है, उसके आधार पर अब यह थोड़ा-बहुत समझ में आ सकता है कि कैसे युवती युवक के रूप में अथवा युवक युवती के रूप में परिवर्त्तित हो सकता है। देह के

---

* देखिए—Yon and Heredity by Amram Scheinfeld—P. 181 and Yon and Heredity—P. 182.

जीव-कायों में उभय लिङ्ग के विकसित होने की बराबर सम्भावनाएँ हैं। जीव की देह में ऐसी ग्रन्थियाँ एवं ऐसे नल हैं जो 'पुं-सेक्स-ग्लैण्ड' अथवा 'स्त्री-सेक्स ग्लैण्ड' के रूप में और वे नल भी पुं-लिङ्ग अथवा स्त्री-लिङ्ग के रूपों में कुछ अज्ञात कारणों से परिवर्त्तित हो सकते हैं। वंशानुक्रम से प्राप्त "फ़ैक्टर्स" के कारण भ्रूण के नर अथवा नारी होने की सम्भावना अधिक होती है। अधिकांश स्थितियों में भ्रूण के बनते समय ही यह निश्चय हो जाता है कि बच्चा लड़का होगा अथवा लड़की। किन्तु कभी-कभी बच्चे के पेट में तो स्त्री-अण्डाणु रहते हैं, पर ग्रन्थियों से रसप्रवाह के कारण बच्चे के बाहरी देहावयव पुरुष-लक्षण-युक्त होते हैं। यह देखकर भ्रम उत्पन्न होता है कि बच्चा लड़का है; किन्तु समय के बीतने पर लड़के में स्त्री के लक्षण दिखाई देने लगते हैं। यथार्थ में बात यह है कि भ्रूण के विकसित होते समय जिस प्रवाह का आधिक्य होता है, उसी के अनुसार बच्चे के लिङ्ग-लक्षण भी बनते हैं।

इस सम्बन्ध में कुछ और रहस्यपूर्ण बातों का उल्लेख किया जाता है। गाय में नाना प्रकार की **यमज सन्तानें** उत्पन्न हो सकती हैं। एक तो दोनों ही बछड़े हो सकते हैं, दूसरे दोनों बछिया हो सकती हैं, तीसरे एक बछड़ा और एक बछिया दोनों एकत्र जन्म ले सकते हैं (ये दोनों स्वाभाविक रूप से पनप सकती हैं किन्तु ऐसा कदाचित् ही होता है) अथवा एक स्वाभाविक बछड़े के साथ एक अस्वाभाविक जीव का जन्म हो सकता है जो न बछड़ा होता है न बछिया। इसका पारिभाषिक नाम 'फ़्रीमार्टिन' (Free-Martin) है। इस फ़्रीमार्टिन में वंशोत्पादन करने की शक्ति नहीं रहती। 'फ़्रीमार्टिन' का बाहरी अङ्ग तो स्त्री का-सा होता है; किन्तु उसके भीतरी अङ्ग पुरुष के से होते हैं। उसकी ग्रन्थियों का स्वाभाविक रूप से तो अण्डाणुओं में रूपान्तरित

होना उचित था; किन्तु जिस बछड़े के साथ उसका जन्म होता है उसके 'सेक्स ग्लैण्ड' के रस से 'फ़्रीमार्टिन' की ग्रन्थियाँ नर-अण्ड-कोष की नाईं बन जाती हैं। 'फ़्रीमार्टिन' के स्तन अर्द्ध-विकसित होते हैं।

'फ़्रीमार्टिन' के जन्म के दो कारण बताये जाते हैं। एक तो यह है कि स्त्री-हॉरमोन के उत्पन्न होने के पूर्व ही नर-हॉरमोन के बनने के कारण एवं जन्म के समय से ही नर होने के कारण बछड़ा तो स्वाभाविक होता है; किन्तु उसका जोड़ा यथार्थ में तो स्त्री होकर ही जन्म लेता है, पर अपने भाई के सेक्स-हॉरमोन के प्रभाव से उसमें नर के लक्षण भी विकसित होते हैं और इस उलझन में उसके लिङ्ग-चिह्न अपूर्ण रह जाते हैं। दो अण्डाणुओं से ऐसे यमज की उत्पत्ति होती है; इसके लिए पारिभाषिक शब्द 'फ़्रेटर्नल ट्विन्स' है। एक ही अण्डाणु से यमज सन्तानों की उत्पत्ति होने पर उन्हें 'आईडेण्टिकल ट्विन्स' कहते हैं।

इसके अतिरिक्त फ़्रीमार्टिन के विषय में दूसरा कारण यह बताया जाता है कि सम्भवतः पुंलिङ्ग के विकसित होने के समय उस पर स्त्री-हॉरमोन आदि का कोई प्रभाव नहीं पड़ता है। या तो स्त्री का कोई प्रभाव रहता ही नहीं या उसका प्रभाव शक्तिशाली नहीं होता है अर्थात् नर-हॉरमोन स्त्री-हॉरमोन से अधिक शक्तिशाली होता है।

चूहों पर जो परीक्षाएँ की गई हैं, उनसे इस समस्या पर बहुत प्रकाश पड़ता है। यह देखा गया है कि एक दिन के मादा-चूहे के पेट से यदि अण्डाणुओं को निकाल लिया जाता है तो भी मादा-चूहे में स्वाभाविक रीति से स्त्री के लक्षण विकसित होते हैं; किन्तु यदि एक दिन के नर-चूहे के पेट से अण्ड-कोषों को निकाल लिया जाता है तो उसमें महान् परिवर्त्तन दिखाई देने लगते हैं। इससे यह प्रतीत होता है कि एक निर्दिष्ट अवस्था में पहुँचने के पूर्व स्त्री-

हॉरमोन का कोई प्रभाव नहीं रहता है एवं भ्रूण की देह में जो जीव-कोष हैं उनमें स्वाभाविक रीति से ही स्त्रीत्व के लक्षण विकसित होते हैं। अथात् किसी प्रकार के हॉरमोन के न रहते हुए भी साधारण जीव-कोषों में स्त्रीत्व के लक्षण उत्पन्न करने की शक्ति अन्तर्निहित है। यदि नर-हॉरमोन का प्रभाव नहीं रहता है तो देह का स्वाभाविक विकास स्त्री के रूप में ही होता है। किन्तु स्त्रीत्व के लक्षणों का विकास एक वार प्रारम्भ हो जाने पर उसके स्थायित्व के लिए स्त्री हॉरमोन की आवश्यकता अनिवार्य हो जाती है। इसके विपरीत पुंस्त्व के विकसित होने के लिए नर-अण्ड-कोषों से नर-हॉरमोन का रहना अत्यावश्यक है। यदि किसी देह में किसी प्रकार की भी सेक्स ग्लैण्ड नहीं रहती है अथवा यदि किसी देह में केवल अण्डाणु रहते हैं तो उस देह में स्त्री के लक्षण ही विकसित होंगे। चूहों में यह बात पाई गई है। नर-हॉरमोन के रहने से देह में नर-लिङ्ग के लक्षण ही विकसित होते हैं। इन परीक्षाओं से हम इस सिद्धान्त पर पहुँचते हैं कि भ्रूण की देह में स्वाभाविक रूप से स्त्री बनने की शक्ति रहती है; किन्तु यदि नर-हॉरमोन का प्रभाव आ जाता है तो वह देह पुरुष के रूप में परिणत हो जाती है। प्रारम्भिक अवस्था में भ्रूण की देह स्त्री बनने के योग्य होती है; यदि उस अवस्था में नर-हॉरमोन का प्रभाव आ जाता है तो वह पुरुष के रूप में ही परिणत हो जाती है।

यदि ऐसा ही होता हो तो उभय लिङ्ग उत्पन्न होने का रहस्य कुछ समझ में आ सकता है। एक नियत समय के अन्दर यदि पुं-हॉरमोन उत्पन्न हो जाता है, तो भ्रूण पुंल्लिङ्ग-युक्त होता है। और यदि इस पुं-हॉरमोन के उत्पन्न होने में कुछ विलम्ब हो जाता है तो उभय-लिङ्ग-विशिष्ट जीव उत्पन्न हो जाता है। इस विलम्ब का परिमाण जितना अधिक होता है, जीव में पुं-लक्षणों

की अपेक्षा स्त्री-लक्षणों के अधिक विकसित होने की उतनी ही सम्भावना रहती है। यह सिद्धान्त मनुष्य के लिए भी लागू है।

स्त्री और पुरुष में प्रभेद—पुरुष देह के जीव-कोष जिनका पारिभाषिक नाम 'सोमाटिक सेल्स'—Somatic Cells—है और बीज-कोष का स्पर्म अथवा जर्म सेल्स—Sperm or Germ Cells—स्त्री-देह के जीव-कोषों से अपेक्षाकृत बड़े होते हैं। स्त्री और पुरुष के साँस लेने की रीतियों में भी अन्तर है। उन दोनों की नाड़ियों की रीति में भी स्पष्ट अन्तर रहता है। शरीर के अन्दर जितनी रासायनिक और अन्य प्रकार की क्रियाएँ होती रहती हैं, उनमें भी स्त्री और पुरुष में भेद हैं।*

प्रसिद्ध जर्मन दार्शनिक शपेन हावेर महोदय ने वंशानुक्रम के सम्बन्ध में, वैज्ञानिक युग के आरम्भ होने के पूर्व, दृढ़ता-पूर्वक यह कहा था कि मानव अपनी माता से ही मस्तिष्क अर्थात् चिन्तन-शक्ति को प्राप्त करता है और अपना व्यक्तित्व पिता से। किन्तु आज यह प्रमाणित हो चुका है कि चिन्तन-शक्ति केवल एक जेनि के आधार पर नहीं बनती। वास्तव में कई जेनियों के सम्मिलित प्रभाव से ही चिन्तन-शक्ति का विकास होता है। इसी प्रकार चरित्र का विकास भी किसी एक जेनि के आधार पर नहीं होता। शपेन हावेर के इस कथन का कि पुत्र अपने गुणों के लिए माता का अत्यन्त ऋणी रहता है, आधुनिक विज्ञान से कुछ समर्थन प्राप्त होता है।

इसके विपरीत गैल्टन महोदय ने बहुत से दृष्टान्त संग्रह करके यह दिखाया है कि प्रसिद्ध व्यक्तियों के जो आत्मीयवर्ग यश प्राप्त कर चुके हैं, उनमें स्त्रियों की अपेक्षा पुरुषों की संख्या ही

---

* Prof. F. A. E. Crew—article on Sex in "An Outline of modern Knowledge" P. 284.

अधिक है। गैल्टन महोदय ने यह भी कहा है कि वैज्ञानिकों के कुलों में मातृकुल का प्रभाव ही सन्तान पर अधिक पड़ा है। उन्होंने यह दिखाया है कि बड़े-बड़े वैज्ञानिकों की ४३ माताओं में से ८ माताएँ ऐसी थीं जो उनके पिताओं से अधिक गुणशालिनी थीं। आधुनिक विज्ञान के अनुसार इस बात का समर्थन होता है।

स्त्री-पुरुषों में जो प्रभेद हैं, वे भी वंश-परम्परा से प्राप्त जेनि के आधार पर ही होते हैं। कुछ वंश-लक्षण ऐसे हैं, जो कन्या द्वारा ही संक्रमित होते हैं। कन्या में दो x (एक्स्) क्रॉमोसोम रहते हैं अर्थात् वंशगत लक्षणों के पुत्रापेक्षा कन्या में अधिक संक्रमित होने की सम्भावना रहती है। पुत्र में तो केवल एक x क्रॉमोसोम रहता है, दूसरा y क्रॉमोसोम होता है। कुछ ऐसे भी वंश-लक्षण होते हैं, जो पुत्रों द्वारा ही वंशजों में संक्रमित होते हैं।

पुरुषों में प्रकृति पर विजय प्राप्त करने की विशेष शक्ति रहती है। युद्ध एवं शिकार में पुरुष स्त्रियों की अपेक्षा अधिक शक्ति का परिचय देता है। स्त्रियों को मुग्ध करना भी पुरुष का ही काम है। प्रकृति के नियमानुसार सन्तान-प्रतिपालन का भार पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियों पर अधिक पड़ा है। स्त्री की अपेक्षा पुरुष को ही स्त्री अधिक आकर्षित करती है। स्त्री सोच-समझकर, जान-बूझकर पुरुषों को अपनी ओर आकर्षित नहीं करती। पुरुष के सान्निध्य में स्त्री लज्जा से विवश हो जाती है; किन्तु उसकी विवशता से पुरुष के मन में एक विचित्र आकर्षण का अनुभव होता है। पुरुष के सम्बन्ध में स्त्री का आचरण संकोच से भरा हुआ होता है, किन्तु उस संकोच के कारण ही पुरुष के मन में स्त्री के प्रति एक सम्मोहन की सृष्टि होती है। स्त्रियों और पुरुषों के व्यवहारों में जो विशेष अन्तर है, उसके कारण प्रायः एक ग़लतफ़हमी होती है। कभी तो पुरुषों पर और कभी स्त्रियों पर यह लाञ्छन लगाया जाता है कि उनकी तो स्वभाव से ही दुष्ट प्रकृति होती है।

कभी तो यह कहना पड़ता है कि सनातन पुरुष स्त्री को आकर्षित करता है और कभी यह कि सनातन नारी पुरुष को आकर्षित करती है। यथार्थ में बात यह है कि स्त्रियों और पुरुषों की प्रकृतियों में एक व्यवधान अवश्य है और वह स्वाभाविक ही है। कुछ जर्मन पण्डितों की राय में स्त्रियों का स्वभाव पुरुषों से अनेक बातों में श्रेष्ठ है। उनकी राय में पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियाँ कम भ्रष्टा एवं कम झगड़ालू होती हैं। किसी घटना के घट जाने के पश्चात् स्त्री में उसका प्रभाव पुरुषों की अपेक्षा अधिक स्थायी एवं अधिक गम्भीर होता है। स्त्री पुरुषों की अपेक्षा कला-कौशल में अधिक दक्ष होती है किन्तु विज्ञान तथा गणित में पुरुष स्त्री का अपेक्षा अधिक दक्ष होता है। राजनीति में स्त्री की उतनी रुचि नहीं रहती जितनी धार्मिक बातों में रहती है। सन्तान-प्रतिपालन में स्त्री की स्वाभाविक रुचि पुरुषों से कहीं अधिक रहती है।

बुद्धिवृत्ति की परीक्षाओं में समवयस्क लड़के और लड़कियाँ एक सा ही सफल होती हैं। किन्तु इस स्थान पर हमें यह स्मरण रखना उचित है कि बाल्यावस्था एवं किशोरावस्था में लड़कियाँ लड़कों की अपेक्षा अधिक परिपक्व हुआ करती हैं। बाल्यावस्था से किशोरावस्था में लड़कों और लड़कियों के स्वभाव और बुद्धि-वृत्तियों में बहुत अन्तर बढ़ जाता है। किन्तु पण्डित एल० एम० टरमैन की परीक्षाओं में लड़कियों की अपेक्षा लड़के बुद्धिवृत्ति में अधिक प्रखर प्रमाणित हुए थे। लड़कों की अपेक्षा लड़कियों में मानसिक एवं शारीरिक विकास अधिक शीघ्र होता है। किन्तु स्कूलों एवं विश्वविद्यालयों के छात्र तथा छात्राएँ समान रूप से ही परीक्षोत्तीर्ण होती हैं। कभी-कभी इन परीक्षाओं में लड़कों की अपेक्षा लड़कियाँ अधिक सफलता दिखाती हैं। उनका अति उज्ज्वल सफलता को देखकर यह आशा उत्पन्न होती है कि भविष्य जीवन में ये लड़कियाँ न जाने कितनी उन्नति करेंगी; किन्तु

६

सांसारिक जीवन की उलझनों में पड़कर उनकी प्रतिभा न जाने कहाँ लुप्त हो जाती है। पर्यवेक्षण-शक्ति एवं स्मृति-शक्ति में नारी पुरुष से पिछड़ी हुई नहीं है, किन्तु साहित्य के क्षेत्र में अथवा नवीन की सृष्टि में साधारणतया नारी पुरुष की अपेक्षा अधिक दक्षता का परिचय नहीं दे पाई है। सम्भवत: इसका कारण यह नहीं है कि नारी की मानसिक शक्ति पुरुष से कम है, वरन् इसका यह कारण है कि नारी की अभिरुचि पुरुष से भिन्न है। नारी की प्रेरणा पुरुष की अपेक्षा भिन्न दिशा की ओर प्रवाहित होती है। साधारणतया नारी पुरुष की अपेक्षा अधिक हठ रखनेवाली होती है। किन्तु उसकी ज़िद पुरुष की ज़िद से भिन्न प्रकार की होती है। नारी सुन्दरी एवं प्रिया होने की अभिलाषिणी होती है, पुरुष कर्त्ता होने का अभिमान करता है, उसके मन में शक्तिमान् होने की दुराशा रहती है। पुरुष दूसरों पर आक्रमण करने में जितने उल्लास का अनुभव करता है स्त्री कष्ट सहन करने में उतनी ही क्षमता रखती है। प्रकृति की अव्यर्थ प्रेरणा से नारी पुरुष को भुलावा देती रहती है, और उसी के अमोघ नियन्त्रण से नारी सन्ततियों के जन्म देनेवाली बनती है। इसी कारण पुरुष एवं सन्तान-सन्ततियों की रुचि-अभिरुचियों पर स्त्री का ध्यान लगा रहता है। स्त्री की वासना-कामनाएँ पुरुष और सन्तान-सन्ततियों पर अवलम्बित रहती हैं। पारिवारिक जीवन में स्त्री का एक विशेष स्थान होता है और उस अवस्थिति के कारण पुरुष की अपेक्षा नारी अधिक सहानुभूति-सम्पन्न होती है। पराई पीर की अनुभूति नारी में पुरुष की अपेक्षा कहीं अधिक रहती है। किन्तु उसकी सहानुभूति गृह-परिवार के संकीर्ण घेरे में ही अधिक स्फूर्त्ति पाती है। यदि ऐसा न होता तो नारी के पारिवारिक जीवन के केन्द्र से अलग निकल जाने की गम्भीर सम्भावना रहती। नारी का स्नेहाकर्षण पति और सन्तान की ओर सीमित रहता है। पति के

मन में माया-मोह उत्पन्न करने में ही स्त्री का कृतित्व है। पुरुष स्त्री की अपेक्षा अधिक स्वार्थपर एवं अपने में अधिक मग्न रहने का अभ्यस्त है। निःस्वार्थ बुद्धि से प्रेरित हो काम करना एवं केवल ज्ञान-प्राप्ति के लिए ज्ञानान्वेषण करने का दृष्टान्त मनुष्यों में भी दुर्लभ है।

ऊपर का विवरण जर्मन वैज्ञानिकों के मतानुसार दिया गया है। उक्त विवरण से जर्मन पण्डितों की मानसिक गति का परिचय मिलता है। निस्सन्देह स्त्रियों और पुरुषों की प्रकृति में यथेष्ट अन्तर है। इसका यह अर्थ नहीं कि पुरुष नारी की अपेक्षा श्रेष्ठ है। इसका केवल इतना ही तात्पर्य है कि स्त्री एवं पुरुष के क्षेत्र भिन्न हैं। अपने-अपने क्षेत्र में पुरुष अथवा स्त्री प्रधान हैं। स्त्री की प्रवृत्तियाँ सीमित क्षेत्र में अत्यन्त गम्भीर हुआ करती हैं; पुरुष की प्रवृत्तियाँ व्यापक रूप से क्रियाशील रहती हैं; इस कारण साधारणतया पुरुष की भावना-कामना स्त्री की अपेक्षा कम गम्भीर हुआ करती हैं। किन्तु किसी एक विषय पर मग्न हो जाने से स्त्रियों अथवा पुरुषों में कोई विशेष अन्तर नहीं रहता है। स्त्री भी जिस विषय पर मन से लग जायगी, उस विषय में वह पुरुष की अपेक्षा कम दक्षता नहीं दिखायेगी।

पाँचवाँ परिच्छेद

पुरुष और स्त्री का पारस्परिक आकर्षण

यौन मोह और आकर्षण—योगसूत्रों में एक स्थान पर यह कहा गया है कि कुछ औषधियों के प्रयोग से भी समाधि की अवस्था प्राप्त की जा सकती है। अर्थात् मानसिक क्रियाओं के परिणाम में जिस अवस्था को हम प्राप्त कर सकते हैं, उसी अवस्था को हम औषधियों के प्रयोग से भी प्राप्त कर सकते हैं।

भारतीय अध्यात्मवाद के दृष्टिकोण से मानसिक क्रिया भी जड़वाद के सिद्धान्त पर प्रतिष्ठित है; अर्थात् मानसिक सत्ता भी जड़ जगत् की ही पर्यायभुक्त है।

आधुनिक वैज्ञानिकों में तथा पाश्चात्य देशों के जनसाधारण में भी आजकल जड़वाद तथा अध्यात्मवाद को लेकर एक द्वन्द्व चल रहा है। कुछ वैज्ञानिक केवल जड़ विज्ञान के आधार पर ही समस्त समस्याओं की मीमांसा करना चाहते हैं। और दूसरे वैज्ञानिक जड़वाद के अतिरिक्त मानसिक सत्ता के आधार पर भी वैज्ञानिक प्रश्नों की आलोचना और मीमांसा करना चाहते हैं। इन दूसरी श्रेणी के वैज्ञानिकों के मतानुसार मानसिक सत्ता, जड़-सत्ता से एक अलग वस्तु है। इनकी राय में मानसिक सत्ता एवं चैतन्य एक ही हैं। जड़वादियों ने अनेक परीक्षाओं के आधार पर यह सिद्ध कर दिखाया है कि रासायनिक द्रव्यों के प्रभाव से मानसिक प्रकृति बनती-बिगड़ती है। अतः उनका कहना है कि मानसिक सत्ता भी जड़ वस्तुओं का ही परिणाम है। स्त्री और पुरुष एक दूसरे के प्रति जैसे आचरण करते हैं, स्त्री पुरुष के प्रति और पुरुष स्त्री के प्रति जिस प्रकार आकर्षित होते रहते हैं, उनके मूल में भी देहस्थित ग्रन्थियों के रसप्रवाह का ही अव्यर्थ प्रभाव है।

मनुष्य तथा अन्य प्राणियों की देह में दो प्रकार की ग्रन्थियाँ रहती हैं; एक तो पुरुष के अण्डकोष और स्त्रियों के डिम्बाणु जैसी ग्रन्थियाँ; दूसरी प्रकार की ग्रन्थियों को अँगरेज़ी में 'डक्टलेस् ग्लैण्डस्' (Ductless Glands) अर्थात् नल-विहीन ग्रन्थियाँ कहते हैं। स्त्रियों और पुरुषों की चारित्रिक तथा मानसिक प्रकृतियाँ इन ग्रन्थियों के विविध प्रकार के रस-प्रवाह पर बहुत कुछ निर्भर हैं। यदि स्त्री की देह से अण्डाणु निकाल लिये जायँ तो पुरुष के प्रति स्त्री का समस्त आकर्षण हवा हो जायगा।

जिस यौन आकर्षण के आधार पर संसार के श्रेष्ठ उपन्यास और काव्य रचे गये हैं, असाधारण प्रतिभावान् कलाकार के निपुण तूलिकाघात से जिस अद्भुत चित्रकला का विकास हुआ है और सङ्गीत की अपूर्व मूर्च्छना की सृष्टि हुई है, वह आकर्षण तभी सम्भव हुआ है जब मनुष्य-देह में ग्रन्थियों से स्वाभाविक रूप में रस-प्रवाह हुआ है। स्त्रियों और पुरुषों में परस्पर आकर्षण का रहस्य इन ग्रन्थियों से रस-निर्गमन में ही छिपा हुआ है।

चूहों पर परीक्षा कर देखा गया है कि जब चुहियों के पेट से अण्डाणु निकाल लिये जाते हैं तब वे चूहों को पास नहीं आने देतीं। किन्तु यदि फिर उनकी देह में अण्डाणु अथवा उसका रस प्रवेश कराया जाता है, तो वे फिर चुहियों का सा आचरण करने लगती हैं; चूहों को पास आने देती हैं और उनसे भोग करने को प्रस्तुत हो जाती हैं।

अण्डाणु और अण्डकोषों को छोड़कर जो दूसरी श्रेणी की ग्रन्थियाँ हैं, उनका भी प्रभाव कुछ कम नहीं है। यदि किसी पुरुष की देह से मस्तिष्क के नीचे की 'पिट्टुइटॉरी' ग्रन्थि निकाल ली जाय तो पुरुष के अण्डकोष भी शुष्कप्राय हो जायँगे, और इस कारण पुरुष में सब प्रकार के यौन लक्षण लुप्तप्राय हो जायँगे। तब उसके मन में स्त्री के प्रति किसी प्रकार का आकर्षण नहीं रह जायगा। यदि फिर उसकी देह में 'पिट्टुइटॉरी' ग्रन्थि का रस प्रवेश कराया जाय तो पुनः वह व्यक्ति पुरुषोचित आचरण करने लगेगा। स्त्रियों के लिए भी ये ही बातें लागू हैं। अर्थात् "गोनाड्स्" अथवा "सेक्स ग्लैण्डस्" का कार्य "डक्टलेस् ग्लैण्ड्स्" के रस-प्रवाह पर निर्भर रहता है। यदि किसी व्यक्ति में "पिट्टुइटॉरी" ग्रन्थि अपूर्ण रह गई हो, अथवा किसी कारण उससे रसप्रवाह न होता हो तो उस व्यक्ति के "सेक्स ग्लैण्ड्स्" भी क्रियाशील नहीं होंगे।

यदि यौवनावस्था के पूर्व ही किसी प्राणी की देह में 'पिटुइटॉरी' ग्रन्थि का रस प्रवेश कराया जाय तो अपनी अवस्था के पूर्व ही उसकी देह में यौवनोचित लक्षण विकसित होने लगेंगे, स्त्री के अण्डाणु अपने समय के पूर्व ही पुष्ट हो जायँगे, पुरुष का लिङ्ग भी यौवन के पूर्व ही अपनी पूर्ण अवस्था को प्राप्त हो जायगा।

इस विषय में एक और बात पर ध्यान रखना आवश्यक है। स्त्री और पुरुष, दोनों के ही 'पिटुइटॉरी' ग्रन्थियों के रस एक ही प्रकार के होते हैं। केवल बात यह है कि 'पिटुइटॉरी' ग्रन्थि से रस-निर्गमन न होने पर सेक्स ग्लैण्ड्स् भी क्रियाशील नहीं होते हैं। इस कारण यौन आचरण एवं विविध प्रकार के यौन आकर्षण के मूल में दोनों प्रकार की ग्रन्थियों का समान प्रभाव रहता है।

वैज्ञानिकगण मनुष्य-देह की अनेक प्रकार की ग्रन्थियों से रस संग्रह करने में समर्थ हुए हैं, और उनके रासायनिक विश्लेषण करके परीक्षागारों में उक्त अनेक प्रकार के रस प्रस्तुत करने में भी समर्थ हुए हैं। जड़वादियों का कहना है कि मानसिक सत्ता जड़ उपादान से कोई स्वतन्त्र एवं रहस्यमय वस्तु नहीं है। मानसिक प्रकृति देह का ही एक विकार अथवा विकास है। अर्थात् पिटुइटॉरी ग्रन्थि के रस-निर्गमन पर ही काम-कला का भी विकास होता है। मनुष्य का मन अथवा उसकी मानसिक क्रिया भी ग्रन्थियों से रस-निर्गमन पर अवलम्बित है—किन्तु पिटुइटॉरी ग्लैण्ड का रस-निर्गमन भी मानसिक इच्छा पर—मानसिक रुचि-अभिरुचि पर—कम निभर नहीं रहता। जड़वादी कहते हैं कि काम, क्रोध, लोभ, मोह, भय, मैथुनादि सभी मानसिक क्रियाएँ ग्रन्थियों से रस-निर्गमन पर अवलम्बित हैं।* उसी के साथ-साथ यह बात भी अत्यन्त सत्य

---

* देखिए—Science in the Making by Gerald Heard.

है कि उन ग्लैण्ड्स् की क्रियाएँ भी व्यक्ति की इच्छा पर कम निर्भर नहीं करतीं। मैथुन के परिणाम में भी ग्रन्थियों की प्रकृति बनती-बिगड़ती रहती है। ग्रन्थियों के रस-प्रवाह के साथ वंशानुक्रम-विज्ञान का बहुत घनिष्ठ सम्बन्ध है। नेचरल सिलेक्शन अथवा अन्य किसी प्रकार की व्याख्या से इस समस्या का कोई समाधान नहीं होता है कि सब प्रकार के प्राणियों में क्यों एक ही विशेष अवस्था में यौवनोचित लक्षण दिखाई देते हैं। कुछ वैज्ञानिकों का कहना है कि मैथुन की अवस्था में देह की ग्रन्थियों में भी परिवर्त्तन होते हैं और उनके प्रभाव से जीव-कोष तथा बीज-कोष दोनों में ही परिवर्त्तन हो जाते हैं। इसी कारण मनुष्यों की एक विशेष अवस्था में ही यौन लक्षण विकसित होने लगते हैं। इस बात में अभी वैज्ञानिकों में यथेष्ट मतभेद है। इस विषय की आलोचना दूसरे परिच्छेद में विस्तृत रूप से की जायगी। मैथुन के समय मैथुन के कारण जीव देह में विशेष परिवर्त्तन होते हैं, इसमें सन्देह नहीं और इस बात में मतभेद भी नहीं है। मतभेद इस बात में है कि उन परिवर्त्तनों के कारण बीज-कोषों में भी परिवर्त्तन होते हैं अथवा नहीं।

यथार्थ बात यह है कि व्यक्ति का आचरण, उसका व्यक्तित्व, आदि केवल एक ही तत्त्व पर अवलम्बित नहीं हैं। व्यक्ति के संस्कार, उसकी कामना-वासना, इच्छा-अभिरुचि, सहजात संस्कार आदि का निर्माण न केवल जेनि पर निर्भर है, न ग्रन्थियों के रस-प्रवाह पर। इस संसार में कोई भी वस्तु ऐसी नहीं है जो केवल जड़ हो अथवा केवल चेतन हो। यह विश्व जड़-चेतनात्मक है। मनुष्य के आचरण सर्वोपरि सहजात संस्कारों पर निर्भर हैं। ये सहजात संस्कार कहाँ से आते हैं, कैसे उत्पन्न होते हैं, इनका यथार्थ उत्तर विज्ञान आज भी नहीं दे पाया है। वंशानुक्रम-विज्ञान से इन प्रश्नों पर कुछ प्रकाश अवश्य पड़ता है; किन्तु पूर्व

का रहस्य रहस्यावृत ही रह जाता है। विभिन्न प्रकार की ग्रन्थियों से नाना प्रकार के रस निर्गत होते रहते हैं। उनके प्रभाव से मानसिक क्रियाएँ एवं विकास होते रहते हैं। इसी प्रकार मानसिक चेष्टाओं के परिणाम में भी ग्रन्थियों से रस-निर्गमन होता है। विशेष-विशेष जेनि के कारण मनुष्य में विशेष-विशेष गुण विकसित होते हैं। उनके ही कारण देह में नाना प्रकार की ग्रन्थियाँ भी उत्पन्न होती हैं। फिर केवल एक-एक जेनि के ही आधार पर वंश-लक्षण नहीं उत्पन्न होते। सम्पूर्ण जेनि के सम्मिलित प्रभाव से ही जीव-देह बनती है। 'पिटुइटॉरी' आदि ग्रन्थियों के प्रभाव से शारीरिक और मानसिक प्रकृति का विकास होता है और मानसिक और शारीरिक क्रियाओं के परिणाम में ग्रन्थियों में भी परिवर्त्तन होते रहते हैं। अध्यात्मवाद के अनुसार एक ही तत्त्व के दो विभिन्न प्रकार के विकास होते हैं, एक विकास में जड़ का प्राधान्य रहता है, दूसरे प्रकार के विकास में चैतन्य का प्राधान्य रहता है। इस सिद्धान्त के अनुसार यदि वैज्ञानिक प्रश्नों की मीमांसा एवं खोज की जाय तभी यथार्थ ज्ञान का उदय होगा एवं सब प्रकार के विरुद्ध-अविरुद्ध प्रश्नों का समाधान सम्भव होगा।

छठा परिच्छेद

सन्तान का पितृत्व कैसे निर्धारित हो ?

विगत महायुद्ध के अवसर पर नाना देशों के सैनिकों की देहों से रक्त लेकर परीक्षाएँ की गई थीं। उन परीक्षाओं के परिणाम में यह ज्ञात हुआ था कि साधारणतः संसार के मनुष्यों में चार प्रकार के रक्त हैं। गहरी चोट पहुँचने के कारण अथवा अधिक कट जाने के कारण या अन्य किसी कारण यदि

रोगी की देह से अधिक मात्रा में रक्तस्राव हो जाय तो दूसरी देह से उस रोगी की देह में रक्त पहुँचाया जाता है। पहले पहल इस प्रकार रक्त के लेन-देन के कारण कभी तो रोगी बच गया है और कभी उसकी मृत्यु भी हो गई है। ऐसे दो विपरीत परिणामों के कारण अनुसन्धान करते समय इस बात का पता चला कि मनुष्यों की धमनियों में प्रधानतः चार प्रकार के रक्त प्रवाहित होते हैं। यदि दो व्यक्तियों के रक्त एक ही प्रकार के हों तो एक का रक्त दूसरे की देह में अनायास ही प्रवाहित कराया जा सकता है। इसमें कोई शंका की बात नहीं है। इस प्रकार के रक्त-प्रवाह से रोगी की उन्नति ही होती है, हानि नहीं होती। किन्तु यदि दो व्यक्तियों के रक्त दो भिन्न प्रकार के होते हैं, तो एक का रक्त दूसरे की देह में सञ्चालित कराने से रोगी की मृत्यु हो जाती है; क्योंकि उक्त दो प्रकार के रक्त एकत्र सम्मिश्रित होने से जम जाते हैं, रक्त का प्रवाह रुक जाता है और रोगी की मृत्यु हो जाती है।

वंशानुक्रम के नियमानुसार उक्त चार प्रकार के मनुष्यों के वंशजों में भी चार प्रकार के रक्त पाये जाते हैं। पिता और सन्तान में एक ही प्रकार के रक्त का होना आवश्यक है। माता और पिता के दोनों प्रकार के रक्तों का सन्तानों में संक्रमण मेन्डेल के नियमानुसार होगा। वैज्ञानिक खोज के परिणाम में यह जाना गया है कि केवल तीन प्रकार के जेनि के प्रभाव से चार प्रकार के रक्त उत्पन्न होते हैं। इन तान जेनियों के नाम ए, बी और ओ रक्खे गये हैं। साधारण व्यक्ति के समझने के लिए इतना ही कहना पर्याप्त होगा कि उक्त तीन प्रकार के जेनियों से रक्त में प्रधानतः तीन प्रकार की वस्तुएँ उत्पन्न होती हैं। ए जेनि से एक प्रकार का पदार्थ उत्पन्न होता है, जिसका नाम "एन्टिजेन ए" (Antigen A) रक्खा जा सकता है। बी

जेनि से "एन्टिजेन बी" (Antigen B) उत्पन्न होता है। ओ जेनि से किसी प्रकार का "एन्टिजेन" उत्पन्न नहीं होता है। ओ जेनि से जो पदार्थ उत्पन्न होते हैं वे अधिक तीव्र नहीं होते। हम अपने माता-पिता से अपने-अपने रक्त के लिए दो-दो जेनि प्राप्त करते हैं, अर्थात् एक माता से और दूसरा पिता से। इसलिए हमारी देह में जेनि निम्न प्रकार के जोड़े में प्राप्त होंगे—AA, BB, अथवा OO; अन्यथा मिश्रित जोड़े, जैसे—AB, AO अथवा BO। जब A और B दोनों जेनि एकत्र रहते हैं, तब दोनों के गुण समान रूप से प्रबल रहते हैं। किन्तु O जेनि का प्रभाव A अथवा B के साथ रहने से स्पष्ट नहीं होता है; AO में A का और BO में B का प्रभाव प्रबल रहता है। इस प्रकार पिता-माता से प्राप्त जेनि के आधार पर मनुष्य के रक्त चार प्रकार के बन जाते हैं;—सांकेतिक चिह्नों में इसी सिद्धान्त को व्यक्त करने पर, इसका समझना सहज हो जायगा। A + A अथवा A + O से जो रक्त बनेगा, उसमें केवल "एन्टिजेन ए" नामक पदार्थ ही प्रधानता को प्राप्त होगा। इसी प्रकार B + B अथवा B + O जेनि के मिश्रित होने पर जो रक्त बनेगा उसमें केवल "एन्टिजेन बी" पदार्थ ही प्रधानतः रहेगा। AB में दोनों पदार्थ समान रूप से रहेंगे। O + O में केवल O प्रकार की वस्तुएँ रहेंगी। अर्थात्—

A + A या A + O = A प्रकार का रक्त; B + B या B + O = B प्रकार का रक्त; A + B = AB प्रकार का रक्त एवं O + O = O प्रकार का रक्त। 'AB' रक्त में यदि A प्रकार का अथवा B प्रकार का अथवा O प्रकार का रक्त सञ्चालित किया जाय तो कोई हानि नहीं होगी। किन्तु O, A अथवा B प्रकार के रक्त में 'AB' रक्त मिश्रित करने पर हानि होगी। क्योंकि 'AB' और O में, 'AB' और A में एवं 'AB'

और B में विभिन्नताएँ हैं। इसी प्रकार O प्रकार के रक्त में केवल 'A' अथवा केवल B अथवा 'AB' प्रकार के रक्त मिश्रित होने पर भी रक्त जम जायगा। किन्तु O प्रकार का रक्त अन्य प्रकार के रक्तों में अनायास ही मिश्रित किया जा सकता है। अर्थात्—

'AB' में A अथवा B अथवा O प्रकार के रक्त मिश्रित किये जा सकते हैं,—इसमें कोई हानि नहीं होगी।

किन्तु O, A अथवा B प्रकार के रक्त में 'AB' रक्त नहीं मिलाया जा सकता है।

O रक्त में भी अन्य प्रकार के रक्त नहीं मिलाये जा सकते। किन्तु O रक्त—अन्य प्रकार के रक्त में अनायास मिश्रित किया जा सकता है।

मनुष्यों में चार प्रकार के रक्त होने के कारण साधारणतया एक के साथ दूसरे के मिश्रित होने पर हानि की सम्भावना रहती है। एक की देह से अन्य की देह में रक्त सञ्चालित करते समय इन सब बातों पर ध्यान रखना आवश्यक है। मनुष्यों में चार प्रकार के रक्त होते हैं; इसके अनुसन्धान के पूर्व यह एक विस्मय की बात थी कि कभी तो रक्त-सञ्चालन से लाभ हुआ और कभी हानि हुई। आज इस समस्या का हल हो गया है। जैसे काली आँखोंवाली माता के गर्भ से विडालाक्षी कन्या का जन्म सम्भव होता है, वैसे ही माता-पिता अथवा सन्तान के रक्तों में भी अन्तर होना सम्भव है।

किसी सन्तान के पितृत्व का निर्णय करते समय ऊपर बताये गये सिद्धान्तों का प्रयोग किया जाता है। अमेरिका के संयुक्त राष्ट्र के न्यायालयों में रक्त-परीक्षा के उपर्युक्त सिद्धान्तों को स्वीकार किया गया है। "यू एण्ड हेरेडिटी" नामक पुस्तक

में अमेरिका के न्यायालयों के कुछ दृष्टान्त दिये गये हैं। उनमें से एक दृष्टान्त का उल्लेख इस स्थान पर किया जाता है।

अमेरिका की एक युवती वहाँ के एक गण्य-मान्य व्यक्ति के विरुद्ध अदालत में यह अभियोग लाई थी कि उक्त व्यक्ति ने मेरे साथ विवाह करने का वादा किया था एवं उसके औरस से मेरे सन्तान उत्पन्न हुई है। इस कारण मुझे क्षति-पूर्ति-स्वरूप इतने रुपये दिये जायँ। न्यायाधीश ने अमेरिका के प्रसिद्ध वैज्ञानिक डा० रूफस ई० स्टेट्सन् को उक्त युवती और उसकी सन्तान के रक्तों की परीक्षा करने को कहा। परीक्षा के परिणाम में पता चला कि युवती का रक्त O प्रकार का था और उसके सन्तान का रक्त A प्रकार का था। इसका तात्पर्य यह था कि माता की ओर से सन्तान को केवल O प्रकार का जेनि प्राप्त हो सकता था। इस कारण उक्त सन्तान को पिता की ओर से ही A प्रकार का जेनि प्राप्त होना सम्भव था। इस प्रकार पिता का जेनि (जिन जेनियों से रक्त की प्रकृति बनी है) B प्रकार का नहीं हो सकता था, क्योंकि सन्तान को 'A' जेनि प्राप्त हुआ था। इस युक्ति के अनुसार पिता का रक्त 'A' अथवा 'AB' प्रकार का ही हो सकता था। डा० स्टेट्सन साहब ने उक्त पिता के रक्त की परीक्षा करके देखा कि उसका रक्त 'O' प्रकार का था।— अब इसमें कोई सन्देह नहीं रहा कि उक्त सन्तान का वह पिता नहीं था। अदालत ने भी डाक्टर के मतानुसार यही राय दी।

A, B और O जेनियों के अतिरिक्त रक्त की प्रकृति दो और गौण जेनियों से भी बनती है। उन दो जेनियों के नाम 'M' और 'N' जेनि रक्खे गये हैं। अर्थात् A, B, AB, और O प्रकार के रक्त के अतिरिक्त MM अथवा NN अथवा MN गुण भी रक्त में मिलते हैं। एक देह से दूसरी देह में रक्त-सञ्चालन के लिए M और N का किसी प्रकार का प्रभाव परलक्षित होता है; किन्तु

सन्तान के पितृत्व निर्णय करने के लिए M और N के होने का महत्त्व है।

इन परीक्षाओं के परिणाम में वैज्ञानिक केवल इतना ही कह सकता है कि अमुक व्यक्ति अमुक सन्तान का पिता नहीं हो सकता; किन्तु इसके विपरीत यह बात निश्चयात्मक रूप से कभी कही नहीं जा सकती कि अमुक व्यक्ति अमुक सन्तान का पिता अवश्य है। विज्ञान इतना ही कह सकता है कि अमुक व्यक्ति अमुक सन्तान का पिता हो सकता है। अर्थात् पिता में जिस श्रेणी का रक्त है, उस श्रेणी के रक्तवाले और भी सैकड़ों व्यक्ति संसार में हैं। आधुनिक विज्ञान के अनुसार पितृत्व के विरोध में ही प्रमाण उपस्थित किये जा सकते हैं, उसके पक्ष में निश्चयात्मक प्रमाण नहीं दिये जा सकते।

M और N प्रमाण के अनुसार एक और दृष्टान्त "You and Heredity" ग्रन्थ में दिया गया है।

एक विवाहित स्त्री ने अदालत में यह दावा किया कि मेरी सन्तान मेरे प्रेमी की है, मेरे पति की नहीं है। उसके पति ने दावा किया कि सन्तान मेरी है। A, B, AB और O श्रेणियों के रक्त के प्रमाणानुसार यह देखा गया था कि पति उक्त सन्तान का पिता हो सकता है। किन्तु पति के और सन्तान के दुर्भाग्यवश M और N प्रमाणानुसार यह सिद्ध हुआ कि पति उक्त सन्तान का पिता नहीं हो सकता था।

पितृत्व-निर्धारण की परीक्षाओं में एक और कठिनाई आ पड़ती है; सन्तान का रक्त परीक्षा के लिए परिपुष्ट होने में एक पूरा वर्ष अथवा उससे भी अधिक समय लगता है। किन्तु जन्म के थोड़े दिनों के अन्दर ही पितृत्व-निर्धारण के लिए बच्चों के रक्त की परीक्षा की आवश्यकता होती है।

ऊपर दिये गये सिद्धान्तों की संक्षिप्त, स्पष्ट और सरल व्याख्या नीचे दी जाती है;—

पति बच्चे का पिता नहीं है।

यदि बच्चे के रक्त की श्रेणी निम्न प्रकार की हो	और स्त्री के रक्त की श्रेणी निम्न प्रकार की हो-	पति के रक्त की श्रेणी निम्न प्रकार की हो
O श्रेणी	चाहे किसी भी श्रेणी का हो	AB श्रेणी
AB श्रेणी	चाहे किसी भी श्रेणी का हो	O श्रेणी
A श्रेणी	O अथवा B श्रेणी	O अथवा B श्रेणी
B श्रेणी	O अथवा A श्रेणी	O अथवा A श्रेणी

एक और प्रकार के प्रमाणानुसार
पति बच्चे का पिता नहीं हो सकता है।

यदि बच्चे के रक्त में गौण लक्षण निम्न प्रकार का हो	और स्त्री के रक्त में गौण लक्षण निम्न प्रकार का हो	पति के रक्त में गौण लक्षण निम्न प्रकार का हो
M	चाहे जिस प्रकार का हो	N
N	चाहे जिस प्रकार का हो	M
MN	N	N
MN	M	M

———

सातवाँ परिच्छेद

वीर्य-उत्पादन की शक्ति—सनातन बीज-कोष

स्त्री के अण्डाणु में पुरुष के वीर्य से केवल एक बीज-कोष के प्रवेश करने पर जीव की देह बनती है। भ्रूण-रूपी एक जीव-कोष के क्रमशः विभाजित होने पर जीव-देह का विकास होता है। इसका परिचय हमें प्राप्त हो चुका है।

एक भ्रूण-कोष से सहस्र कोषों की उत्पत्ति होती है। ये सब कोष अथवा जीव-कोष, धीरे-धीरे, एक-एक, विशेष कार्योपयोगी, मांस-पेशी, अस्थि, मज्जा आदि विभिन्न अङ्गों के रूप में बनते जाते हैं। किन्तु कुछ कोष अलग रह जाते हैं। देह के बनने-बनाने में ये कोई कार्य नहीं करते। देह के विनष्ट होने पर भले ही ये नष्ट हो जायँ; अन्यथा इनका नाश नहीं होता। इन्हीं कोषों से वीर्य अथवा बीज-कोष बनते हैं और ये पुनः सन्ततियों में पहुँच जाते हैं। इस प्रकार इन बीज-कोषों का कभी भी नाश नहीं होता। एक हिसाब से ये अविनाशी हैं।

जन्म के समय से ही बालक के अण्डकोषों में ये विशेष कोष्ठ रहते हैं, जिनसे कैशोरावस्था के बाद यौवनावस्था में वीर्य उत्पन्न होता है। जिस प्रकार केवल एक कोष से ही लाखों कोष उत्पन्न होते हैं उसी प्रकार कुछ बीज-कोषों से ही लाखों बीज-कोष उत्पन्न होते हैं।

यह प्रश्न उठ सकता है कि क्या मनुष्य-देह में वीर्य उत्पादन की शक्ति सीमित है अथवा नहीं ? साधारण रीति से यह कहा जा सकता है कि मनुष्य में वीर्य उत्पादन की शक्ति सीमित नहीं है। केवल एक बार के वीर्यपात से बीस करोड़ से लेकर पचास करोड़ बीज-कोष निकलते हैं। फिर भी जिन कोषों से ये उत्पन्न होते हैं, वे पूर्ववत् ही क्रियाशील एवं शक्तिशाली रह जाते हैं। जब तक

देह नीरोग एवं स्वस्थ बनी रहती है, उस समय तक वीर्य उत्पादन की शक्ति मनुष्य में रहती है।

किन्तु स्त्री के अण्डाणुओं की संख्या सीमित है। जन्म से ही कन्या की देह में एक सीमित संख्या के अपरिपक्व अण्डाणु रहते हैं। स्त्री के बीज-कोष अण्डाणुओं में परिवर्त्तित हो जाते हैं। यौवनावस्था में प्राय: २८ दिन में केवल एक अण्डाणु ऋतु के समय निकलता है। प्रायः ३५ वर्ष तक स्त्री के अण्डाणु निकलते रहते हैं। उसके पश्चात् स्त्री के लिए ऋतुकाल बन्द हो जाता है। अण्डाणु यौवनावस्था में ही परिपक्व होते हैं किन्तु अण्डाणु के भीतर के वंश-सूत्रों में (Chromosomes) क्रॉमोसोम में कोई परिवर्त्तन नहीं होता।

सन्तान के वीर्य अथवा अण्डाणु में जो वंश-सूत्र (Chromosomes) रहते हैं वे पिता-माता के वंश-सूत्रों के ही जीवित अंश हैं। बृहदारण्यक उपनिषद् में कहा गया है कि पति स्वयं स्त्री के गर्भ में प्रवेश करता है और तब सन्तान की उत्पत्ति होती है। पिता और माता अपने-अपने पिता-माताओं से जो वंश-सूत्र प्राप्त करते हैं, उन्हीं के अंशों को वे अपनी सन्तानों को देते हैं। इस प्रकार जीवनी-शक्ति का प्रवाह न जाने किस अतीत युग से चला आ रहा है।

आठवाँ परिच्छेद

आयु और वंश

साधारण रीति से यह कहा जा सकता है कि किसी-किसी वंश में मनुष्य अधिक दिन जीवित रहते हैं और किसी-किसी वंश में मनुष्य की आयु थोड़ी होती है। साधारण व्यक्ति की यह धारणा कुछ सीमा तक सत्य है।

कुछ डाक्टरों की राय तो यह है कि मनुष्य की आयु जन्म के समय ही निर्दिष्ट हो जाती है। भविष्य में, यदि अकस्मात् किसी दुर्घटना के कारण, गाड़ी के नीचे दबकर अथवा छत से नीचे गिरकर, अथवा साँप के काट लेने से मृत्यु नहीं होती है तो किसी बीमारी के कारण अथवा साधारणतया व्यक्ति की मृत्यु एक निर्दिष्ट समय पर ही होगी। किसी भी उपाय से न तो किसी की आयु बढ़ाई जा सकती है और न घटाई जा सकती है।

जन्म के समय पिता, पितामह, माता, मातामह, पितामही, मातामही आदि से वंश-सूत्रों के द्वारा वंश के जो गुण-अवगुण प्राप्त होते हैं, उन्हीं के आधार पर आयु बनती है। परिमित आहार और विहार के कारण स्वास्थ्य सुन्दर बन सकता है, नाना प्रकार के रोगों से बच सकते हैं; किन्तु आयु नहीं बढ़ सकती। इसी प्रकार दुराचरण से स्वास्थ्य बिगड़ सकता है, रोगी बन सकते हैं; तथापि आयु नहीं घट जायगी। इसका कारण यह है कि वंशगत गुण-अवगुणों के कारण हम जिस जीवनी-शक्ति के उत्तराधिकारी बनते हैं, उसी के आधार पर हमारी आयु भी बनती है। बाहरी कारणों से उसमें कोई अन्तर नहीं पड़ सकता।

इस संसार में, जीवित वस्तुओं में, वृक्षों से अधिक और किसी की भी आयु नहीं होती। वृक्षों में भी अलग-अलग वंश-लक्षण होते हैं। पेड़-पौधों की आयु में भी नाना प्रकार के तारतम्य होते हैं। कोई पौधा केवल एक वर्ष में ही मर जाता है, कोई एक ऋतु में समाप्त हो जाता है और कोई वृक्ष बहुत वर्षों तक जीवित रहता है। आस्ट्रेलिया में एक प्रकार का वृक्ष है, जिसकी आयु वर्त्तमान समय में १५,००० वर्ष हो चुकी है। इस श्रेणी के वृक्षों का नाम 'मैक्रोज़ामिया' है। भूमि और जल-वायु आदि विविध कारणों से भी वृक्षों की आयु कुछ सीमा तक घटती-बढ़ती है, वृक्षों पर उन सबों का प्रभाव भी कुछ कम नहीं है; किन्तु वृक्षों की प्रकृति में भी कुछ

तत्त्व है, जिसके कारण कुछ वृक्षों की आयु अधिक होती है और कुछ की कम। एक ही जल-वायु और एक ही भूमि में विभिन्न जाति के वृक्ष विभिन्न समय तक जीवित रहते हैं। अर्थात् वृक्षों में भी वंशगत धारा वर्त्तमान है।

वन्य जन्तुओं में भी वंशगत धारा के हिसाब से कोई तो अधिक दिन तक जीवित रहता है और कोई थोड़े दिनों तक। वन्य जन्तुओं को हर घड़ी नाना प्रकार के संकटों का सामना करना पड़ता है, तथापि साधारणतया विभिन्न श्रेणी के जीवों की आयु कम अधिक होती है। यदि हाथियों की ठीक-ठीक सेवा की जाय और उन्हें यत्न-पूर्वक रक्खा जाय तो वे नब्बे से सौ वर्ष तक जीवित रह सकते हैं। अश्व की आयु साधारणतया ४५ वर्ष तक की होती है; कुत्ते और बिल्ली बीस वर्ष तक जीवित रहते हैं, बैल तीस वर्ष तक जीवित रहते हैं।

उपनिषदों में मनुष्य की आयु का प्रमाण १०० वर्ष तक कहा गया है। किन्तु महाभारत और पुराणों में मनुष्यों की आयु सहस्र वर्ष तक बताई गई है। ईसाइयों की धर्मपुस्तक 'बाईबल' में भी प्राचीन काल के मनुष्यों की आयु प्रायः सहस्र वर्ष ही बताई गई है। किन्तु किसी-किसी का कहना है कि विश्वव्यापी महाप्लावन के पूर्व वर्ष की गणना प्लावन के बाद की गणना से भिन्न थी। 'बाईबल' में ही मूसा आदि कुछ व्यक्तियों की आयु १२० से १८० वर्ष तक बताई गई है।

आधुनिक समय में कभी-कभी ऐसा सुनने में आया है कि अमुक व्यक्ति की आयु १०५ वर्ष की अथवा १८० वर्ष की है।— ऐसे दृष्टान्तों को छोड़कर वैज्ञानिक रीति से बीमा कम्पनियों में जो गणनाएँ होती हैं, उनसे यह ज्ञात हुआ है कि वर्त्तमान समय में अमेरिका के संयुक्त राष्ट्र में प्रतिलक्ष व्यक्तियों में केवल एक व्यक्ति १०० वर्ष जीवित रहता है। किन्तु औसतन अमेरिका के

मनुष्यों की आयु पुरुष के लिए ६० वर्ष एवं स्त्री के लिए ६४ वर्ष की है। इसके अतिरिक्त विशेष-विशेष वंशों में मनुष्यों की आयु भिन्न-भिन्न प्रकार की है। इस बात को देखकर यह धारणा उत्पन्न हुई है कि मनुष्यों की आयु भी वंश-परम्परा से प्राप्त जेनि के आधार पर कम या अधिक होती है।

इस नित्य परिवर्त्तनशील संसार में कोई भी वस्तु अपरिवर्त्तित अवस्था में नहीं रह सकती। विश्व-प्रकृति की भाँति, मनुष्य समाज में और संसार की विभिन्न जातियों में भी धीरे-धीरे नाना प्रकार के परिवर्त्तन हो रहे हैं। १०० वर्ष पूर्व जापान की विशेषता के बारे में किसको क्या पता था! इसी प्रकार आज से १०० वर्ष बाद भी न जाने कौन अज्ञात अथवा ज्ञात जाति संसार के रङ्गमञ्च पर अपनी अभावनीय विशेषता का परिचय दे सकेगी!

मनुष्य-समाज में नाना प्रकार के परिवर्त्तनों के साथ-साथ मनुष्यों के आयुकाल में भी परिवर्त्तन दिखाई देते हैं। विगत १८वीं शताब्दी में, यूरोप में, मनुष्य की आयु औसतन ३५ वर्ष तक की होती थी। ई० सन् १६०१ में यह ५० वर्ष तक पहुँच गई थी। आज, औसतन, मनुष्य की आयु अमेरिका में ६० वर्ष की होती है।

चिकित्साविज्ञान की उन्नति के कारण डिप्थिरिया और कुकुर-खाँसी आदि रोगों से अब १०० में ८० बच्चे बच जाते हैं। ताऊन, हैज़ा आदि बीमारियों से भी पहले की अपेक्षा आजकल कम आदमी मरते हैं। इस प्रकार पूर्वापेक्षा आजकल अधिक मनुष्य जीवित रहते हैं, किन्तु व्यक्तियों की आयु इन सब बातों से अधिक बढ़ी नहीं। केवल बच्चों के लिए ही यह कहा जा सकता है कि आधुनिक युग में उनके बचे रहने की आशा पहले से बढ़ गई है।

मनुष्यों की मृत्यु कैसे और क्यों होती है, इसका ज्ञान अभी तक विज्ञान को प्राप्त नहीं है। किसी वैज्ञानिक का कहना है

कि मनुष्य-देह में कोई-कोई अंग सड़ने लगता है। दूसरे वैज्ञानिकों का कहना है कि हमारी धमनियों में रक्त-प्रवाह की शक्ति कम हो जाती है और उनमें दूसरे प्रकार के भी परिवर्त्तन हो जाते हैं इसी से मनुष्य की मृत्यु हो जाती है। ऐसे भी वैज्ञानिक हैं जो कहते हैं कि देह की ग्रन्थियों की शक्ति लुप्त हो जाने के कारण मनुष्यों की मृत्यु हो जाती है। किन्तु वंशानुक्रम-विज्ञान के अनुसार यह मत सबसे प्रबल माना जाता है कि वंश-परम्परा से प्राप्त जेनि के कारण ही मनुष्यों की आयु जन्म के समय से ही निर्दिष्ट हो जाती है। सम्भव है, विशेष-विशेष जेनि के कारण, देह के विशेष-विशेष अंग एक नियत समय पर क्षय को प्राप्त होते हों। हृदय-यन्त्र का नियन्त्रण, सम्भव है, किसी एक जेनि द्वारा होता हो, अथवा कई एक जेनि के सम्मिलित प्रभाव से देह-रूपी यन्त्र के विशेष-विशेष अंग एक साथ नियन्त्रित होते हों।

वैज्ञानिकों ने मनुष्यदेहाश्रित कुछ विशेष-विशेष जेनि की पहचान कर ली है। उनमें ऐसे भी जेनि हैं, जिनके कारण मनुष्यों की मृत्यु हो सकती है। पेड़-पौधों और जन्तुओं में भी ऐसे जेनि प्राप्त हुए हैं। ऐसे भी जेनि हैं, जिनके कारण गर्भावस्था में ही अथवा जन्म के थोड़े दिनों के अन्दर ही, जीव की मृत्यु हो जाती है। हमें ऐसे परिवार मालूम हैं, जिनमें बच्चे अत्यल्प समय के अन्दर ही मर जाते हैं। जिन निम्न श्रेणी के प्राणियों को लेकर वंशानुक्रम के सम्बन्ध में परीक्षाएँ की जाती हैं, उनमें ऐसे मृत्युवाही अनेक जेनि का पता चला है। किन्तु मनुष्यों में इस प्रकार के प्राण-नाशक थोड़े जेनि का ही पता चला है। इस प्रकार के और भी जेनि की खोज आज तक हो रही है। कभी-कभी ऐसा देखा गया है कि स्त्री गर्भधारण का अनुभव करती है; किन्तु थोड़े ही दिनों में मालूम होता है कि वह गर्भवती नहीं हुई थी।

ऐसे अवसरों पर वैज्ञानिकगण अनुमान करते हैं कि स्त्री यथार्थ में गर्भवती हुई थी, किन्तु मृत्यु-वहनकारी जेनि के कारण उस गर्भ का नाश हो गया। जेनि के कारण ही कभी-कभी गर्भ-पात भी हो जाता है।

जिस जेनि के कारण मृत्यु हो सकती है वह जेनि किसी भी देह में अकेले नहीं रह सकता। अथवा यों कहना और भी उचित होगा कि किसी एक जेनि के कारण प्राणी की मृत्यु नहीं हो सकती। ऐसा होना सम्भव ही नहीं; क्योंकि जिस जेनि के कारण मृत्यु हो सकती है, वह जेनि उत्तराधिकार के सूत्र से बच्चे में आ ही नहीं सकता। भ्रूण में आते ही तो वह भ्रूण को नष्ट कर देगा। इस कारण यह अनुमान किया जाता है कि मृत्यु-वहन-कारी जेनि अकेले कार्यकारी नहीं होते। दो अथवा उससे अधिक जेनि सामूहिक रूप में कार्यकारी हो सकते हैं। ऐसे विषाक्त जेनि में से एक को तो पिता की ओर से और दूसरे को माता की ओर से सन्तान प्राप्त कर सकती है। एक प्रकार के रोग में बच्चों की अँगुलियाँ नहीं के बराबर रहती हैं। अनुमान किया जाता है कि वंश-परम्परा से प्राप्त जेनि के प्रभाव से ही ऐसा होता है। वैज्ञानिकों के निकट एक ऐसा दृष्टान्त उपस्थित है; दो निकट आत्मीय, चचेरे भाई-बहनों के सम्मिलन से एक ऐसी कन्या का जन्म हुआ था, जिसके न पैर की एक भी उँगली थी और न हाथ की। दो वर्ष की आयु में इस लड़की की मृत्यु हो गई थी। हीमो-फिला एक और प्रकार की बीमारी है। इस रोग में एक बार रक्त-स्राव आरम्भ हो जाने से फिर रक्त का निकलना बन्द नहीं हो सकता; और रोगी की मृत्यु अनिवार्य हो जाती है। इस रोग की भी उत्पत्ति वंश-परम्परा से प्राप्त जेनि के कारण ही होती है। इस रोग के मूल में भी दो जेनि ही क्रियाशील रहते हैं। "हीमोफिला" रोग-युक्त कोई भी व्यक्ति अधिक दिन जीवित नहीं रह सकता।

यदि कुछ जेनि के कारण गर्भावस्था में, अथवा शिशु-अवस्था में या बाल्यावस्था में जीव की मृत्यु हो सकती है, तो ऐसे भी जेनि हो सकते हैं, जिनके कारण किसी दूसरे नियत समय पर, अधिक अवस्था में मनुष्य की मृत्यु होती हो। अभी तक वैज्ञानिक रीति से इस सिद्धान्त की पुष्टि नहीं हुई है। किन्तु वंश के हिसाब से यह देखा गया है कि किसी-किसी घर में लोगों की आयु कम होती है और किसी-किसी में अधिक। उत्तराधिकार-सूत्र से जेनि को पाना ही इसका कारण है।

अमेरिका और यूरोप आदि देशों में बीमा-कम्पनियों ने सैकड़ों परिवारों की परीक्षाएँ की हैं। उन परीक्षाओं के आधार पर यह कहा जा सकता है कि मनुष्यों की आयु दीर्घ और अल्प होना वंशगत है। बीमा-कम्पनियों का कहना है कि जिस व्यक्ति के माता-पिता अधिक दिन जीवित रहें, उस व्यक्ति की आयु अधिक होने की सम्भावना है। जिस वंश में माता-पिता अधिक दिन जीवित रहते हैं उस वंश में बीस वर्षवाले व्यक्ति के जीवित रहने की आशा अन्य वंश की अपेक्षा कम से कम ढाई वर्ष अधिक की जा सकती है। जिस वंश में माता-पिता ७५ वर्ष तक जीवित रहें उस वंश के ३० वर्ष के व्यक्तियों में से प्रतिशत २६·६, ८० वर्ष तक जीवित रह सकते हैं। और जिस वंश में माता-पिता ६० वर्ष तक जीवित रहें, उस वंश में, प्रतिशत २०·३ व्यक्तियों की ३० वर्ष की अवस्था में यह आशा की जा सकती है कि वे ८० वर्ष तक जीवित रहेंगे।

डाक्टर रेमण्ड पर्ल महोदय ने बहुत-सी परीक्षाएँ की हैं। उनकी दृढ़ राय यह है कि वंश-परम्परा से प्राप्त जेनि के आधार पर ही मनुष्यों की आयु कहीं दीर्घ होती है और कहीं अल्प। डा० पर्ल ने यह देखा है कि जो लोग ९० अथवा १०० वर्ष तक जीवित रहे, ऐसे १०० व्यक्तियों में से ८७ के माता अथवा माता-

पिता, दोनों की आयु दीर्घ थी। उनमें से ऐसे बहुत से व्यक्ति थे, जिनकी मातामही, पितामह आदि पूर्वजगण अधिक आयु-वाले व्यक्ति थे।

इसमें कोई सन्देह नहीं कि पारिपार्श्विक वातावरण का प्रभाव भी मनुष्यों पर कम नहीं है। ग़रीब घरों में बच्चों की मृत्यु बनिस्बत अमीर घरों के अधिक होती है।

इस स्थान पर एक और रहस्यपूर्ण बात का स्मरण रखना अच्छा होगा। साधारणतया लोग यह समझते हैं कि स्त्री की अपेक्षा पुरुष अधिक शक्तिशाली है। किन्तु वास्तविक क्षेत्र में स्त्री पुरुष की अपेक्षा अधिक जीवित रहती है। ई० सन् १९३५ की गणना के हिसाब से अमेरिका की Metropolitan Life Insurance Co. ने निम्नलिखित हिसाब लगाया था—

जीवन की आशा
(यूरोपियनों के लिए)

किस आयु में	पुरुष जीने की आशा कर सकता है	स्त्री जीने की आशा कर सकती है
३० वर्ष	और भी ३८ वर्ष	और भी ४१ वर्ष
४० वर्ष	” २९ वर्ष	” ३२ वर्ष
५० वर्ष	” २२ वर्ष	” २४ वर्ष
६० वर्ष	” १५ वर्ष	” १६ वर्ष
७० वर्ष	” ९ वर्ष	” १० वर्ष
८० वर्ष	” ५ वर्ष	” ५½ वर्ष

वैज्ञानिकगण इस खोज में लगे हुए हैं कि हम मृत्यु से कैसे बच सकते हैं। इसी सम्पर्क में आयु के सम्बन्ध में भी खोज हो रही है। बहुत से वैज्ञानिक यह आशा कर रहे हैं कि मनुष्यों की आयु १२० वर्ष तक बढ़ाई जा सकती है। मेचनि-

काफ़ नामक एक रूस के वैज्ञानिक आशा करते हैं कि मनुष्यों की आयु १८५ वर्ष तक पहुँच सकती है।

डा० एलेकसिस कैरेल अमेरिका के एक बड़े भारी वैज्ञानिक हैं। इन्हें नोवेल पुरस्कार प्राप्त हुआ है। विज्ञान के क्षेत्र में इन्होंने अति आश्चर्य-जनक कार्य करके दिखाया है। प्राणि-देह से इन्होंने मांसपेशी और दूसरे अंग-प्रत्यंगों को काटकर निकाल लिया है और उन्हें बोतलों में रखकर अपने इच्छानुसार जितने दिन चाहा जीवित रक्खा; किन्तु जब ये मांसपेशी अथवा जीव-देह के अंग-प्रत्यंग मनुष्य-देह के अंग के रूप में रहते हैं, तब इनका स्वतन्त्र अस्तित्व नहीं रहता है। जीवित देह में ये अंग किसी एक मूल तत्त्व के नियन्त्रण में रहते हैं, इस कारण उनका जीवित रहना और वृद्धिप्राप्त होना समग्र जीव के प्रयोजनानुसार होता है। इस दृष्टि से विचार करने पर यह आशा की जा सकती है कि भविष्य में विज्ञान की सहायता से हमारी आयु अपनी इच्छा पर बहुत कुछ अवलम्बित रहेगी।

एक और आश्चर्य की बात का उल्लेख करके हम इस अध्याय को समाप्त करेंगे। कुछ ऐसे कीट-पतंग हैं, जो कुछ कारणों से मृतवत् हो जाते हैं; किन्तु अनुकूल वातावरण में जल-वायु के संस्पर्श में आकर वे पुनः जीवित हो जाते हैं। मृतवत् अवस्था में वे पत्तों की तरह इधर-उधर उड़ते रहते हैं; किन्तु जीवित होने पर वे फिर जीवित प्राणियों की तरह आचरण करते हैं। उत्तर मेरु में रूस के वैज्ञानिकों ने बर्फ़ में जमे हुए पेड़-पौधों को पुनः संजीवित कर पाया है। यूरोप में भी कुछ जीवों को बर्फ़ में रखकर यह देखा है कि कुछ समय के लिए वे मृतवत् हो जाते हैं; किन्तु उन्हें पुनः जीवित किया जा सकता है। अर्थात् यदि मनुष्यों को भी बर्फ़ में ढककर सौ वर्ष तक मृतवत् रक्खा जाय, तो सौ वर्ष के बाद उनके जीवन का पुनरारम्भ हो सकेगा।

यहाँ पर अपने देश के हठयोगियों का भी उल्लेख कर देना आवश्यक है। हठयोगियों का दावा है कि उनकी क्रियाओं के अनुसार मनुष्य अपने इच्छानुसार स्वस्थ एवं जीवित रह सकते हैं। आधुनिक विज्ञान को अभी इस बात का पता नहीं है।

———

नवाँ परिच्छेद

वंश और वातावरण

सोमाटोप्लाज़्म् और **जर्मप्लाज़्म्** अर्थात् जीव-देह के कोष अथवा जीव-कोष और वीर्य अथवा बीज-कोष—आधुनिक विज्ञान के मतानुसार जीव से ही जीव की उत्पत्ति होती है। किस अतीत युग में, किस मुहूर्त्त में सर्वप्रथम प्राण की उत्पत्ति हुई थी, इसका निर्णय आज भी नहीं हो पाया है। किन्तु अनेक परीक्षाओं के परिणाम में यह ज्ञात हुआ है कि प्राणहीन वस्तु से प्राण की उत्पत्ति नहीं हो सकती। प्राण से ही प्राण की उत्पत्ति होती आ रही है। अति आदिम अवस्था में एक-कोष जीव द्विखण्डित होकर दो कोषों में, अर्थात् दो जीवों में, परिणत हो जाता है। इन दो जीवों की न माता है न पिता; क्योंकि एक कोष से दो कोषों के हो जाने पर प्रथम कोष का अस्तित्व ही नहीं रह जाता है। प्रथम कोष का समस्त पदार्थ इन दोनों नवीन कोषों में आ जाता है। पुनः इन नवीन कोषों का प्रत्येक कोष फिर द्विखण्डित होता है। इस प्रकार अतीत काल से लेकर आज तक जीवनी-शक्ति का अखण्ड स्रोत नित्य प्रवाहित होता आया है। इस प्रकार एक हिसाब से जीवनी-शक्ति अविनाशी है। प्राथमिक अवस्था में जीव के लिए मृत्यु नहीं थी।

एक कोष जब द्विखण्डित होकर दो कोषों में परिणत हो जाता है तो उनमें साधारणतया कोई नवीनता नहीं उत्पन्न होती। ये दोनों नवीन कोष भी सर्वांश में प्रथम कोष की तरह ही होते हैं। किन्तु मैथुन के कारण जब दो जीवों का सम्मिश्रण होता है, तब विचित्रता की उत्पत्ति होती है।

मैथुन के परिणाम में जिस जीव की उत्पत्ति होती है उसकी देह के दो भाग होते हैं, एक देहकोष और दूसरा बीजकोष। देहकोष को अँगरेज़ी में 'सोमाटोप्लाज़्म्' कहते हैं। हमने यह भी देख लिया है कि स्त्री के अण्डाणु और पुरुष के वीर्य अर्थात् बीजकोष के मिलने से भ्रूणकोष की उत्पत्ति होती है; और इस एक भ्रूणकोष से सैकड़ों कोष उत्पन्न होते हैं। किन्तु भ्रूण के विभाजित होते समय ही कुछ कोष अलग रह जाते हैं, देहकोष नहीं बनते। इन्हीं कोषों से बीजकोषों की उत्पत्ति होती है। सन्तान के बीजकोषों में पिता और माता के बीज-कोष ज्यों के त्यों चले आते हैं। विख्यात वैज्ञानिक वाइज़मैन का कहना है कि 'सोमाटोप्लाज़्म्' में, अर्थात् देह के कोषों में तो नाना रूप के परिवर्त्तन होते रहते हैं; किन्तु जर्मप्लाज़्म् में अर्थात् बीजकोष में कोई परिवर्त्तन नहीं होता।

जर्मप्लाज़्म् से सोमाटोप्लाज़्म् की उत्पत्ति होती है; किन्तु सोमाटोप्लाज़्म् से जर्मप्लाज़्म् की उत्पत्ति नहीं होती। देह का तो नाश हो जाता है; किन्तु बीजकोष अथवा जर्मप्लाज़्म् का नाश नहीं होता। बाजकोष से नवीन देह की उत्पत्ति होती रहती है। अकस्मात् यदि मनुष्य की मृत्यु हो जाय तो अलग बात है; किन्तु साधारणतया जर्मप्लाज़्म् से नित्य नूतन परिपूर्ण देह बनती रहती है और पुरुषानुक्रम से यह जर्म-प्लाज़्म् सन्तानों में चला जाता है। इस प्रकार अजर-अमर होना केवल कल्पना का खेल नहीं है। जीव-विज्ञान से

इसका पुष्टि होती है।* प्रति पीढ़ी में जर्मप्लाज़्म् अलग से नहीं बनता। यौवनावस्था में भी यह नये सिरे से नहीं बनता। यह तो जन्म के समय ही पिता-माता से जीव को प्राप्त होता है। जिन जर्मप्लाज़्म् से पिता-माता की देहें बनती हैं, उन्हीं जर्मप्लाज़्म् से सन्तान की भी देहें बनती हैं। अर्थात् जर्मप्लाज़्म् की विभिन्न धाराएँ अनादि काल से प्रवाहित होती आ रही हैं; उन्हीं धाराओं से विभिन्न समय में नाना प्रकार की देहें बनती आई हैं। इन धाराओं का मानों नाश नहीं होता।

जर्मप्लाज़्म् में क्रॉमोसोम हैं, क्रॉमोसोमों में जेनि हैं। वंश-परम्परा से हम जेनि के उत्तराधिकारी होते हैं। इन जेनियों के आधार पर ही मनुष्य के स्वभाव और चरित्र बनते हैं। मनुष्य के एक-एक स्वभाव के लिए एक-एक जेनि उत्तरदायी है। किन्तु एक जेनि का केवल एक ही कार्य नहीं होता। एक ही जेनि के प्रभाव से दृष्टिशक्ति बन सकती है और उसी के साथ-साथ श्रवणशक्ति अथवा जिह्वा पर भी उसका प्रभाव पड़ सकता है। इस प्रकार

---

* देखिए—Genetics by Walter, pp. 12 to 14 : "Although this theory of the continuity of the germ plasm has been actually demonstrated in comparatively feed instances, all the facts we know concerning the behaviour of the germinal substance are consistent with it. The phrase 'Life everlasting' is not confined, therefore, to the vocabulary of the theologian, and potential immortality is more than a mystical hope of beleiving humanity. They are based upon demonstrable biological facts."

† "Germ plasm is not freshly formed in each generation neither does it arise anew when the individual reaches maturity, but it is a continuous substance, present from the begining"—Genetics by Walter—P. 13.

मनुष्य का स्वभाव कई एक जेनि के सम्मिलित प्रभाव से बनता है। माता-पिता से हम जिस चरित्र को प्राप्त करते हैं उस चरित्र का पूर्ण विकास, वातावरण अनुकूल न होने पर, नहीं होता। वंशानुक्रम की धारा से हम जिस स्वभाव के उत्तराधिकारी होते हैं, उसका अर्थ यह है कि विशेष-विशेष परिस्थितियों में हम विशेष-विशेष रूप से आचरण करते हैं। जेनि के कारण जो स्वभाव बनता है, वह भी विशेष-विशेष वातावरण में ही पनप सकता है। वंशानुक्रम के नियमानुसार बालक मेधावी एवं तीक्ष्ण-बुद्धि-सम्पन्न हो सकता है; किन्तु अनुकूल शिक्षा एवं उपयुक्त अवसर प्राप्त न होने पर उस बालक की उन्नति सम्भव नहीं होती।

मनुष्य-चरित्र के विकसित होने में वंशानुक्रम से प्राप्त स्वभाव प्रबल होता है, अथवा उपयुक्त सामाजिक वातावरण में, शिक्षा-दीक्षा पाने के कारण, वातावरण का प्रभाव प्रबल होता है? इस प्रश्न को लेकर आज भी वैज्ञानिक जगत् में तुमुल संघर्ष चल रहा है। यह प्रश्न वैसा ही है जैसा यह प्रश्न कि बीज प्रबल है अथवा भूमि, जल, वायु, ताप आदि-आदि पारिपार्श्विक वस्तुएँ? किन्तु यह प्रश्न व्यर्थ है; क्योंकि एक के अभाव से दूसरा व्यर्थ हो जाता है। मनुष्य का चरित्र वंश-परम्परा से प्राप्त जेनि एवं पारिपार्श्विक वातावरण इन दोनों के ही सम्मिलन से बनता है।

प्रसिद्ध वैज्ञानिक श्रीयुत जे० बी० एस० हालडेन महोदय ने दो दृष्टान्त देकर बीज और वातावरण के पारस्परिक प्रभाव को समझाया है;—दो प्रकार के गेहूँ के नाम रेड फ़ाइफ़ (Red Fife) एवं हाइब्रिड एच (Hybrid H) हैं। जब ये दोनों प्रकार के गेहूँ दो इंच लम्बे और दो इंच चौड़ी भूमि के व्यवधान पर बोये जाते हैं, तब रेड फ़ाइफ़ प्रकार का गेहूँ सबसे अधिक उत्पन्न होता है। जब इन दोनों गेहुओं को दो इंच और छः इंच भूमि के अन्तर में लगाया जाता है, तब इन दोनों गेहुओं की उपज बराबर-बराबर

होती है। जब इन दोनों के बीच का अन्तर और भी अधिक होता है, तब हाइब्रिड एच (Hybrid H) की पैदावार रेड फ़ाइफ़ से अधिक हो जाती है।* अर्थात् वातावरण एवं वंश दोनों के ही प्रभाव मिलकर पौधों, जन्तुओं अथवा मनुष्यों के स्वभाव बनते हैं। मछलियाँ पानी में ही जीवित रह सकती हैं, पानी में ही उनका तैरना होता है और पानी में ही उनकी जीवन-लीला समाप्त होती हैं। इस कारण (मछलियों के प्रसङ्ग में) वंशानुक्रम का प्रभाव पानी में ही परिलक्षित हो सकता है, पानी के बाहर नहीं। यह प्रश्न व्यर्थ है कि मछलियाँ अथवा पानी इनमें से कौन अधिक महत्त्व का है।

समाज-व्यवस्था से सम्बन्धित प्रश्नों की मीमांसा करते समय यह प्रश्न स्वत: ही उदय होता है कि वंश-परम्परा से प्राप्त गुण-अवगुणों का प्रभाव मनुष्य पर कहाँ तक पड़ता है। क्या मनुष्य अपनी चेष्टा एवं इच्छा के अनुसार अपनी शारीरिक और मानसिक उन्नति कर सकता है अथवा नहीं ? ग़रीब घरों की सन्तानों की शारीरिक और मानसिक उन्नति अमीर घरों की सन्तानों की अपेक्षा अवश्य कम होगी। अब प्रश्न यह है कि क्या दरिद्र बालकों की कम उन्नति होना वंश के कारण है अथवा पारिपार्श्विक वातावरण के कारण। इसका निर्णय करना बहुत कठिन है। आजकल के शिक्षालयों में दरिद्र एवं अर्थशाली सभी घरों के लड़के पढ़ने आते हैं। किन्तु ग़रीब घर के लड़कों के लिए अपनी पढ़ाई में उन्नति करना सहज बात नहीं है। इँगलैण्ड आदि देशों में इस विषय के अनेक तथ्य संग्रह किये गये हैं, जिनसे यह अनुमान होता है कि दरिद्र घर के लड़के प्राय: अधिक

---

* देखिए—Science for Citizen by Lancelot Hoghen P. 1063.

मेधावी नहीं होते। किन्तु यह कैसे कहा जाय कि वंश के कारण ही ऐसा होता है, दरिद्रता एवं पारिपार्श्विक वातावरण के कारण नहीं? इसी प्रकार भारतीय वर्णव्यवस्था भी वंश के आधार पर अवलम्बित है। यह व्यवस्था भी आधुनिक विज्ञान के अनुसार समर्थन योग्य है अथवा नहीं, आदि आदि प्रश्नों की मीमांसा वंशानुक्रम-विज्ञान से प्राप्त हो सकती है। इसलिए यह प्रश्न बहुत महत्त्व का है कि वातावरण अथवा वंश के प्रभाव में से कौन अधिक महत्त्व रखता है।

कुछ बातों में तो यह अत्यन्त स्पष्ट है कि वंश-परम्परा से प्राप्त गुण-अवगुणों का प्रभाव अर्थात् बीज-कोषों का प्रभाव वातावरण से अधिक महत्त्व रखता है। एक दृष्टान्त लीजिए,—सफ़ेद चुहियों के पेट से यदि सब अण्डाणु निकाल लिये जायँ और उसमें काली चुहियों के अण्डाणु रख दिये जायँ तो सफ़ेद चुहियों के बच्चे सब के सब काले ही होंगे, सफ़ेद नहीं। बच्चे पैदा हो जाने के बाद ही, दूसरे के अण्डाणु चुहियों के पेट में रख दिये जाते हैं और वे अण्डाणु दूसरे के पेट में रहते हुए भी पूर्ववत् क्रियाशील रहते हैं। इतने भिन्न वातावरण में रहते हुए भी बीजकोष अर्थात् अण्डाणु अपने स्वभाव को नहीं छोड़ते। इसी प्रकार यदि सफ़ेद गुलाब के फूल की डाल लाल गुलाब के पौधों में लगा दी जाती है तो उस लाल गुलाब के पौधे से सफ़ेद गुलाब के फूल ही निकलेंगे, लाल नहीं। चूहों की भाँति दूसरे प्राणियों के पेट से भी अण्डाणु निकालकर परीक्षा की गई है। इन सब परीक्षाओं के परिणाम में यह निश्चयात्मक रूप से निर्धारित हो जाता है कि बीजकोषों पर पारिपार्श्विक वातावरण का कोई प्रभाव नहीं पड़ता। निम्न श्रेणी के जीवों एवं पेड़-पौधों पर और भी अनेक प्रकार की परीक्षाएँ हुई हैं, और उन सब परीक्षाओं के परिणाम में यह प्रमाणित हुआ है कि साधारणतया

बीजकोषों पर वातावरण का प्रभाव नहीं पड़ता।* निम्न श्रेणी के जीवों और पौधों को लेकर जैसी परीक्षाएँ हुई हैं, वैसी परीक्षा मनुष्यों पर करना सम्भव नहीं है। किन्तु जो नियम पेड़-पौधों के लिए एवं निम्न श्रेणी के जीवों के लिए लागू हैं, वे नियम मनुष्यों के लिए भी लागू होंगे ऐसा समझना युक्ति-संगत एवं स्वाभाविक है।

प्राणियों पर वातावरण का भी यथेष्ट प्रभाव पड़ता है, इसमें कोई सन्देह नहीं। यदि संगठित एवं व्यापक रूप से शिक्षा की व्यवस्था की जाय एवं दरिद्र तथा अर्थशाली घरों के लड़कों तथा लड़कियों के लिए समान रूप से रहने और खाने-पीने की व्यवस्था की जांय, तब यह पता चलेगा कि वंश के हिसाब से कितने बालक प्रखर बुद्धिवाले निकलते हैं और कितने नहीं। सोवियट रूस में इसकी परीक्षा हुई है और यह ज्ञात हुआ है कि प्राकृतिक कारणों से वंशगत गुण-अवगुणों के उत्तराधिकारी होने के कारण व्यक्ति व्यक्ति में बहुत अन्तर है। किन्तु सामाजिक क्षेत्र में इस सिद्धान्त का प्रयोग करते समय बहुत सावधान होने की आवश्यकता है। वंशगत गुण-अवगुणों के हिसाब से कहीं भी समाज की व्यवस्था नहीं हुई है। भारतीय वर्णव्यवस्था के आधुनिक रूप में न जाने कितनी त्रुटियाँ आ गई हैं। हमारे समाज में भी आज गुणी व्यक्तियों के लिए उपयुक्त स्थान नहीं है।

बहुत से वैज्ञानिक इस मत के अधिक पक्षपाती हैं कि वंश की अपेक्षा शिक्षा-दीक्षा और पारिपार्श्विक वातावरण का अधिक महत्त्व है। उनका कहना है कि सामाजिक वातावरण और शिक्षा-दीक्षा के कारण सभी मनुष्य उपयुक्त रूप से शिक्षित किये जा सकते हैं।

* देखिए—Human Heredity by Baur, Fischer & Lenz—P. 39.

वे वंश के फेर में पड़ना नहीं चाहते। वे लोग वैज्ञानिक दृष्टि से इस बात की खोज कर रहे हैं कि वंश के हिसाब से, समान रूप से मानसिक शक्ति आदि के उत्तराधिकारी होने पर भी, पारिपार्श्विक वातावरण के कारण मनुष्यों में विभिन्न शक्तियों का स्फुरण सम्भव होता है। यमज सन्तान को लेकर आज भी परीक्षाएँ हो रही हैं।

यमज सन्तान दो प्रकार की होती हैं। जब एक ही स्त्री-अण्डाणु में एक पुं-बीजकोष प्रवेश करता है तो कभी-कभी एक ही भ्रूण दो भ्रूणों में परिणत हो जाता है और तब दो बच्चे एक साथ जन्म लेते हैं। ऐसे बच्चों को 'मनोवल ट्विन्स' (Monoval Twins) कहते हैं। एक दूसरे प्रकार के यमज सन्तान होते हैं;—जब दो अण्डाणुओं में दो पुं-बीज-कोष अलग-अलग प्रवेश करते हैं तब दो बच्चे एक ही पेट में तो जन्म लेते हैं, किन्तु उनका विकास दो भाइयों की तरह होता है। ऐसी यमज सन्तानों को फ्रेटर्नल ट्विन्स (Fraternal Twins) कहते हैं।

'मनोवल' अथवा 'आईडेन्टिकल' (Identical) ट्विन्स एक ही लक्षणोंवाले होते हैं; फ्रेटर्नल ट्विन्स एक ही लिङ्ग-विशिष्ट हो भी सकते हैं और नहीं भी हो सकते। वे, दोनों लड़के अथवा दोनों लड़कियाँ या एक लड़का और उसकी साथी एक लड़की भी हो सकती है।

वंशानुक्रम की दृष्टि से अर्थात् वंशगत गुण-अवगुणों के उत्तराधिकारी होने की दृष्टि से मनोवल ट्विन्स मानों एक ही व्यक्ति के दो शरीर हों। फ्रेटर्नल ट्विन्स मानों दो भाइयों अथवा दो बहनों अथवा एक भाई और एक बहन ने अचानक, एक ही साथ माँ के पेट में जन्म लिया हो। भाई-भाई अथवा भाई-बहनों में जो अन्तर रहता है, ठीक वैसा ही अन्तर फ्रेटर्नल ट्विन्स में भी रहता है।

मनोवल ट्विन्स के विभिन्न अङ्ग-प्रत्यङ्गों में अत्यन्त आश्चर्यजनक सादृश्य रहता है। फ़्रेटर्नल ट्विन्स में उतना सादृश्य नहीं रहता। मनोवल ट्विन्स में निम्नलिखित विषयों पर अत्यन्त सादृश्य रहता है—(१) लिङ्ग एक ही प्रकार का होगा, (२) रक्त भी एक प्रकार का ही होगा, (३) रक्त का दबाव (Blood Pressure) एक होगा, (४) नाड़ी की गति एवं श्वास-प्रश्वास की गति भी एक प्रकार की होगी, (५) आँख का रङ्ग एवं दृष्टि-शक्ति एक प्रकार की होगी, (६) देह का रङ्ग, बालों का रङ्ग एवं बालों में यदि कोई चक्र हो तो वे सब एक प्रकार के होंगे, (७) हथेली, पैर के तलवे एवं उँगलियों का ढाँचा एक सा होगा। (८) उनकी लम्बाई, वज़न, मस्तक का ढाँचा, एवं मुखड़े की बनावट एक सी होती हैं। फ़्रेटर्नल ट्विन्स में उक्त प्रकार का कोई सादृश्य नहीं होता।

वैज्ञानिकगण, 'मनोवल' एवं 'फ़्रेटर्नल' ट्विन्स के बारे में रत्ती-रत्ती बातों पर ध्यान देते हैं। वे जानना चाहते हैं कि यदि 'मनोवल' ट्विन्स बचपन से ही अलग-अलग रख दिये जाते हैं, तो उनमें किसी प्रकार की चरित्रगत विभिन्नता उत्पन्न होती है अथवा नहीं। यदि मनोवल ट्विन्स के चरित्र अलग-अलग रक्खे जाने पर अलग-अलग रूप से विकसित होते हैं, तो यह समझा जायगा कि वंश से वातावरण का प्रभाव प्रबल है। और यदि उनके अलग-अलग रक्खे जाने पर भी उनके चरित्र का विकास एक प्रकार से ही होता है तो यह मानना पड़ेगा कि पारिपार्श्विक वातावरण की अपेक्षा वंश का प्रभाव ही प्रबल होता है। इसी प्रकार फ़्रेटर्नल ट्विन्स के एक साथ लालित-पालित होने पर यदि उनके चरित्र का विकास एक सा ही होता है, तो वंश की अपेक्षा वातावरण का ही प्राधान्य माना जायगा।

यह देखा गया है कि एक ही परिवार में लालित-पालित होने पर भी भाई-भाई के चरित्र में जितना सादृश्य रहता है, फ्रेटर्नल ट्विन्स के परस्पर के चरित्र में उनसे अधिक सादृश्य होता है। किन्तु मनोवल ट्विन्स में यह सादृश्य फ्रेटर्नल ट्विन्स की अपेक्षा कहीं अधिक रहता है।

कभी-कभी ऐसा भी देखा गया है कि जन्म के समय मनोवल ट्विन्स में से एक मृत अवस्था में माँ के पेट से निकलता है। यदि मनोवल अर्थात् आइडेन्टिकल ट्विन्स यथार्थ में सर्वाङ्ग रूप से एक ही होते तो जन्म के समय दोनों ही मृत अवस्था में जन्म लेते अथवा दोनों ही स्वस्थ अवस्था में। इस कारण यह अनुमान किया जाता है कि मनावल ट्विन्स भी सर्वाङ्ग रूप से एक प्रकार के नहीं होते एवं माँ के पेट में भी वे सर्वाङ्गरूप, एक ही वातावरण में, नहीं वृद्धि प्राप्त करते हैं।

मनोवल ट्विन्स अर्थात् आइडेन्टिकल ट्विन्स में परस्पर जो अन्तर रहता है उसके भी कारण हैं। भ्रूण-कोष के द्विखण्डित होने के समय पर भी यह विभिन्नता निर्भर करती है। यदि भ्रूण-कोष के बनते ही कोष का विभाजन हो जाता है, तब दोनों यमज सन्तानों में यथार्थ में बहुत बड़ी समता रहती है, मानों एक ही जीव दोनों देहों में जीवन धारण करता हो। किन्तु यदि भ्रूण की देह बनने में कुछ समय बीत गया हो एवं देह के दक्षिण और वाम अङ्गों का बनना प्रारम्भ हो गया हो, तब उस अवस्था में भ्रूण के द्विखण्डित होने पर दक्षिण भाग से उत्पन्न बच्चा दूसरे बच्चे से कुछ अधिक पुष्ट होगा एवं वह दूसरे बच्चे से कुछ पहले ही जन्म ले सकता है; इस प्रकार यमज सन्तानों में से प्रथम बच्चा दूसरे से वज़न में भी कुछ अधिक भारी होगा। इसी कारण यमज सन्तानों में जो बच्चा प्रथम जन्म लेगा, वह परवर्त्ती जीवन में दूसरे से शारीरिक और मानसिक गुणों में भी अधिक परिपुष्ट होगा।

दर्पण में अपने मुख को देखते समय हम अपने मुख के विशेष-विशेष लक्षणों को अपने प्रतिबिम्ब में जिस प्रकार देख पाते हैं, उसी प्रकार कभी-कभी मनोवल यमज सन्तानों में समान-समान लक्षण दर्पण के प्रतिबिम्ब जैसे बन जाते हैं। अर्थात् जो लक्षण एक के दक्षिण अङ्ग में दिखाई देगा, वही लक्षण दूसरे के वाम अङ्ग में दिखाई देगा।

अति प्राथमिक अवस्था में भ्रूण के विभाजित होते समय यदि विभाजन अपूर्ण रह जाता है तो नाना प्रकार के विचित्र रीति से जुड़े हुए यमज सन्तान जन्म लेते हैं। कभी एक ही देह में दो मस्तक बन जाते हैं, अथवा एक देह में चार हाथ चार पैर निकल आते हैं।

साधारणतया किसी किसी वंश में यमज सन्तान अधिक जन्म लेते हैं; अर्थात् यमज सन्तान का होना वंशगत लक्षण है। यूरोप में और अमेरिका के युक्त राष्ट्र में प्रति ९० में एक यमज सन्तान जन्म लेती है और जापान में प्रति १६० में १ यमज सन्तान होती है। माता की आयु अधिक होने पर ही फ़्रेटर्नल टिवन्स का जन्म सम्भव होता है। कभी-कभी किसी-किसी माता के एक साथ तीन-तीन बच्चे भी जन्म लेते हैं। कभी तो एक ही अण्डाणु से तीनों जन्म लेते हैं, और कभी कभी दो अण्डाणुओं से तीन के जन्म होते हैं, जिनमें दो तो मनोवल अर्थात् आइडेन्टिकल टि्वन्स होते हैं और तीसरा 'फ़्रेटर्नल टि्वन' होता है। ऐसा अनुमान किया जाता है कि प्रति ८,००० जन्म में एक बार तीन यमज सन्तानों का जन्म होता है। कदाचित् एक साथ चार सन्तानों का भी जन्म होता देखा गया है। प्रायः ७००,००० जन्म में एक बार चार सन्तानों का एक साथ जन्म होता है। ये सब आँकड़े यूरोप के ही हैं।

सन् १९३४ की मई में अमेरिका में ५ बहनें एक साथ उत्पन्न हुई थीं। इन पाँचों को लेकर वैज्ञानिक रीति से अत्यन्त सावधानी

के साथ परीक्षाएँ की गई हैं, उनके परस्पर के व्यवहार के प्रति अत्यन्त ध्यान रक्खा गया है और उनके प्रत्येक आचरण का निरीक्षण किया गया है।

उन पाँच यमज लड़कियों में जो सबसे बड़ी थी वह और सब बहनों के साथ बहुत ही प्रेम से मिलती-जुलती थी। पढ़ने-लिखने में, बुद्धि-विवेचना में वह सबसे होशियार थी; किन्तु खेल-कूद के समय वह दूसरी बहनों को सबसे अधिक मौक़ा देती थी। दूसरी बहन हर बात में अपने को ही आगे रखती थी। वह चाहती थी कि सब बहनें मेरी ओर ताकती रहें। तीसरी बहन भोली-भाली अपने में मस्त लड़की थी। उसे यह परवा नहीं थी कि कौन खेल-कूद में सबसे आगे बढ़ आती है, और मुझे अधिक मौक़ा मिलता है अथवा नहीं। चौथी बहन के बारे में कुछ कहना कठिन था; क्योंकि वह कभी कुछ और कभी कुछ करती थी। पाँचवीं बहिन सबसे कमज़ोर एवं अपटु थी। हर बात में उसे सहायता की आवश्यकता थी। उसकी बड़ी बहन हर घड़ी उसकी सहायता के लिए उसके पास दौड़-दौड़ आती थी। जेनि के हिसाब से इन पाँचों लड़कियों की देह में एक ही प्रकार के जेनि थे; किन्तु वास्तविक जगत् में ये पाँचों एक दूसरी से कितनी भिन्न थीं। इस दृष्टान्त से यह भी अनुमान करना अस्वाभाविक नहीं है कि जेनि के आधार पर ही व्यक्तित्व के विकास का समस्त रहस्य उद्घाटित नहीं होता है। आधुनिक विज्ञान पूर्वजन्म को मानता नहीं। सम्भव है, भविष्य में मानना पड़े।

पूर्वोक्त पाँच बहनों के सिवा दूसरी यमज सन्तानों को लेकर भी दूसरी प्रकार की परीक्षाएँ हुई हैं। एक मनोवल यमज सन्तानों के जन्म के थोड़े ही दिनों के अन्दर उनके माता-पिता की मृत्यु हो गई। उनके निकट आत्मीयों में से एक ने उन यमज लड़कियों में से एक को पाला, दूसरी को दूसरे ने

पाला। सबसे पहले तो परीक्षा करके यह देख लिया गया कि ये यमज लड़कियाँ मनोवल ट्विन्स हैं अथवा नहीं। फिर कुछ वर्षों के पश्चात् वे लड़कियाँ एकत्र हुईं तब उनकी बुद्धि की परीक्षा की गई। उनके स्कूल और कालेज की परीक्षाओं के फलों की तुलना की गई। इस प्रकार यह देखा गया कि विभिन्न वातावरण के कारण दोनों बहनों में कुछ कुछ अन्तर हो गया है। अर्थात् वैज्ञानिकों के मतानुसार उपर्युक्त दृष्टान्त से यह सिद्ध हुआ कि वंशगत जेनि की अपेक्षा वातावरण अधिक प्रबल है। किन्तु इन दोनों लड़कियों के चरित्रों में जो अन्तर पाया गया वह बहुत अधिक न था। यह बात सत्य है कि दोनों लड़कियाँ दो प्रकार के वातावरणों में लालित-पालित हुई थीं; एक दूसरी से अधिक पीड़ित हो गई थी, एक लड़की के साथ एक परिवार का व्यवहार अच्छा नहीं हुआ था; आदि, आदि कारणों से उनकी प्रकृतियों में अवश्य कुछ अन्तर हो गया था।—इस दृष्टान्त से एक और प्रश्न उदित होता है। ऊपर के दृष्टान्त से हमने केवल इतना ही जान पाया कि दो लड़कियाँ, वंशपरम्परा से प्राप्त गुण-अवगुणों की उत्तराधिकारी समान रूप से होने पर भी, विभिन्न वातावरण में उनके परस्पर के चरित्र और स्वभाव कुछ भिन्न-भिन्न हो गये। यह भिन्नता भी अधिक नहीं थी। किन्तु हमारे सम्मुख सबसे महत्त्व का प्रश्न तो यह है कि यदि वंश के हिसाब से दो व्यक्ति समान रूप से बुद्धिमान् एवं मानसिक तथा चारित्रिक स्वभाव में भी समान न हों, तो क्या उनमें से मन्द बुद्धिवाला व्यक्ति, शिक्षा-दीक्षा और पारिपार्श्विक वातावरण के प्रभाव से, दूसरे व्यक्ति के, जो स्वाभाविक रूप से अधिक बुद्धिमान् था, बराबर हो सकता है ? अर्थात् वंशगत विभिन्नताएँ रहते हुए भी क्या पारिपार्श्विक वातावरण के कारण, उपयुक्त शिक्षा-दीक्षा के कारण, मन्द बुद्धिवाला, क्रूर-स्वभाव-विशिष्ट व्यक्ति

बुद्धिमान् एवं दयालु-स्वभाव-विशिष्ट बन जायगा ? यह बात सत्य है कि यमज सन्तानों को लेकर परीक्षा करने से एक बड़ी सुविधा यह रहती है कि ये दोनों वंश के हिसाब से तो एक प्रकार के ही गुण-सम्पन्न होंगे; किन्तु इस बात में तो कोई सन्देह ही नहीं कि वंशगत उत्तराधिकार-सूत्र से हम जिन गुण-अवगुणों को, जिस स्वभाव को प्राप्त होते हैं वे एक विशिष्ट वातावरण के लिए ही सत्य एवं कार्यकारी हैं; सर्वावस्था में वे समान रूप से सत्य नहीं हो सकते।

अध्यापक न्यूमैन (Professor Newman) महोदय बहुत सी यमज सन्तानों की परीक्षा करके इन निर्णयों पर पहुँचे हैं—

आइडेन्टिकल ट्विन्स के चरित्र में अर्थात् उनके स्वभाव, उनकी बुद्धि, उनके शारीरिक गठन आदि आदि विषयों में इतनी अधिक समानता होती है कि केवल वातावरण के आधार पर यह सम्भव नहीं। मनोवल ट्विन्स, अर्थात् एक अण्डाणु से उत्पन्न दो यमज सन्तान यदि अलग-अलग रहकर भिन्न-भिन्न वातावरण में लालित-पालित होते हैं, तो भी उनका पारस्परिक मेल ऐसे फ्रेटर्नल टिवन्स के पारस्परिक पारिवारिक मेल की अपेक्षा कहीं अधिक होता है जो एक ही परिवार में, एक ही वातावरण में लालित-पालित होते हैं। इस कारण यह अनुमान किया जा सकता है कि वंश-परम्परा से प्राप्त गुण-अवगुण के कारण मनुष्य का चरित्र बहुत कुछ बनता है। इसके साथ-साथ यह भी स्मरण रखना आवश्यक है कि आइडेन्टिकल ट्विन्स में जितनी शारीरिक समता है, उतनी समता मानसिक अथवा साधारण व्यक्तित्व के बारे में नहीं है। संक्षेप में अध्यापक न्यूमैन का कहना है—शारीरिक लक्षणों के सम्बन्ध में वातावरण की अपेक्षा वंश का प्रभाव अधिक होता है; किन्तु व्यक्ति की बुद्धि के विकसित होने में वंश की अपेक्षा वातावरण का प्रभाव अधिक प्रबल होता है। शिक्षा-

दीक्षा के बारे में वातावरण का प्रभाव और भी प्रभावशाली होता है, और व्यक्तित्व एवं साधारण स्वभाव के विकसित होने में पारिपार्श्विक वातावरण का प्रभाव सर्वापेक्षा प्रबल प्रमाणित हुआ है।

अध्यापक जे० लैंग ने भी यमज सन्तानों को लेकर परीक्षाएँ की हैं। उनकी परीक्षा का फल दूसरों से कहीं भिन्न है। अध्यापक लैंग ने ऐसे दृष्टान्त उपस्थित किये हैं, जिनसे यह अव्यर्थ रूप से प्रमाणित होता है कि वंश के आधार पर हम जिन प्रवृत्तियों के उत्तराधिकारी होते हैं, उनके कारण हमारा जीवन मानों पहले से ही एक बँधे हुए रास्ते पर चलने के लिए विवश रहता है। अध्यापक लैंग ने अपनी परीक्षाओं के फल 'क्राइम एज़ डेस्टिनी' (Crimes Destiny) नामक पुस्तक में लिखे हैं। उक्त पुस्तक में से एक दृष्टान्त का उल्लेख यहाँ पर किया जाता है। एक परिवार में दो यमज लड़कियों का जन्म हुआ। किन्तु घटनाचक्र के फेर में पड़कर उन दोनों लड़कियों में से एक ने स्कूल और कालेज की शिक्षा पाई, एवं बाद को उसे स्कूल में पढ़ाने का काम मिल गया। दूसरी लड़की को उपयुक्त शिक्षा नहीं प्राप्त हुई, एवं अल्पशिक्षित होकर वह किसी कारख़ाने में काम करने लग गई। कुछ दिनों के पश्चात् सहसा एक दिन दोनों लड़कियाँ दोनों अलग-अलग जगहों से अपना-अपना काम छोड़कर चली आईं। दोनों ने ही अपने-अपने ऊपरवाले अफ़सरों से झगड़ा करके नौकरियाँ छोड़ दी थीं। इससे भी आश्चर्य की बात यह थी कि दोनों ने ही ठीक एक ही समय में नौकरियाँ छोड़ी थीं। उन दोनों लड़कियों के जीवन में इसी प्रकार और भी घटनाएँ हुईं, जिनके कारण हमें यह स्वीकार करना ही पड़ेगा कि वंशगत गुण-अवगुणों के कारण हमारा जीवन पहले से ही एक निर्धारित रास्ते पर चलने के लिए थोड़ा-बहुत विवश रहता है। पारिपार्श्विक वातावरण एवं शिक्षा-दीक्षा

के कारण जीवन में अवश्य कुछ परिवर्त्तन हो जाते हैं, किन्तु साधारण रीति से हमारा जीवन एक निर्धारित रास्ते पर चलने के लिए थोड़ा-बहुत बाध्य रहता है। भारतीय फलित ज्योतिष के अनुसार यह कहा जाता है कि समग्र जीवन की होनेवाली घटनाएँ प्रबल सम्भावना के रूप में पहले से ही वर्त्तमान रहती हैं। किन्तु पारिपार्श्विक वातावरण के कारण व्यक्तिगत उद्यम-उद्योग के परिणाम में उक्त सम्भावनाओं में कुछ-कुछ परिवर्त्तन हो जाना सम्भव है। किन्तु साधारणतया ऐसे दृढ़चित्त कर्मशील व्यक्ति संसार में दुर्लभ हैं। आधुनिक वैज्ञानिकगण अध्यापक लैंग के प्रमाणों को स्वीकार करने में कुछ हिचकते हैं; किन्तु लैंग के मत को वे लोग एकदम अस्वीकार नहीं कर पाते। उन लोगों का केवल इतना ही कहना है कि लैंग ने थोड़े दृष्टान्तों को लेकर एक व्यापक परिणाम निकाला है। वे दूसरे दृष्टान्तों के आधार पर लैंग के मत में कुछ सुधार की आवश्यकता अनुभव करते हैं। इस स्थान पर हम एक और बात का उल्लेख करना आवश्यक समझते हैं। भारत में एक संन्यासी हो चुके हैं, जो सोऽहं स्वामी के नाम से प्रसिद्ध थे। अपनी जवानी में वे सरकस के खिलाड़ी थे। सरकस में रहते समय शेरों के साथ खेला करते थे और कभी-कभी खेलते समय वे अपने मुख को शेर के मुख में अनायास रख देते थे। उनके एक बड़े भाई थे। वे संन्यासी हो गये थे। अब साधारण दृष्टि से तो लोग यही कहेंगे कि एक भाई संन्यासी हुए और एक भाई खिलाड़ी। किन्तु सूक्ष्म दृष्टि से देखने पर यह जान पड़ता है, कि जो भाई संन्यासी नहीं हुए, उन्हें भी जीवन की माया न थी। देखने में तो वे सरकस के खिलाड़ी थे, किन्तु अन्तःप्रकृति में वे भी निर्मोही थे एवं उत्तर काल में वे भी संन्यासी ही हो गये। इस प्रकार ऊपर से देखने में दो व्यक्तियों के चरित्र भिन्न जान पड़ सकते हैं, किन्तु सूक्ष्म दृष्टि से

देखने पर उन प्रतीयमान दोनों विभिन्न चरित्रों में बुनियादी रीति से कुछ समताएँ भी दीख पड़ेंगी। इस प्रकार सूक्ष्म रीति से विचार करने की आवश्यकता है।

यमज सन्तानों का एक और दृष्टान्त यहाँ दे देना आवश्यक है। वाईटज़ नामक एक वैज्ञानिक ने भी यमज सन्तानों को लेकर परीक्षाएँ की हैं। उनकी परीक्षित दो बहनों को कान की बीमारी हो गई थी। उन दोनों यमज बहनों को एक ही आयु में वह बीमारी हो गई थी; अच्छी हो जाने के बाद फिर उन्हें एक ही आयु में कान का रोग उत्पन्न हो गया। दोनों के कान एक ही प्रकार से बहने लगे थे। इसका तात्पर्य यह है कि दो व्यक्तियों के स्वतन्त्र जीवन एक ही सूत्र से बँधे हुए थे एवं हम मनुष्य, अपने को जितना स्वन्त्र समझते हैं, वास्तव में उतने स्वतन्त्र नहीं हैं। वैज्ञानिक लैंग के सिद्धान्त के साथ वैज्ञानिक वाइटज़ का दृष्टान्त मिलता-जुलता है।*

दसवाँ परिच्छेद

अदृष्टवाद और पुरुषकार

यदि जन्मगत संस्कारों के आधार पर ही हमारा जीवन बनता-बिगड़ता है, तो क्या एक झूठे अदृष्टवाद के मोह में हमें निश्चेष्ट रह जाना पड़ेगा? अपने उद्यम के सहारे क्या हम अपना जीवन बना नहीं सकते?

इस सम्बन्ध में हज़ारों बातों की एक बात यह है कि समाज में सब प्रकार की उन्नति के रास्ते सब के लिए समान रूप से खुले रहने चाहिएँ। जन्म के कारण किसी के लिए भी उन्नति का मार्ग

* Human Heredity—P. 268.

बन्द नहीं रहना चाहिए। किन्तु विज्ञान की दृष्टि से इस बात की खोज होनी नितान्त आवश्यक है कि जन्म से ही मनुष्य विशेष-विशेष गुणों-अवगुणों और संस्कारों को लेकर ही जीवन प्रारम्भ करता है। जन्म से ही एक मनुष्य दूसरे मनुष्य से अधिक बुद्धिमान्, अधिक स्मृति-शक्ति-सम्पन्न, अधिक मेधावी हो सकता है। इसके अनेक दृष्टान्त प्राप्त हैं।

कुछ दिन पूर्व पोलैण्ड से एक दम्पती अमेरिका गये थे। उस दम्पती के लड़के, साम्यूएल रेशेस्की, की आयु उस समय, केवल आठ वर्ष की थी। दूसरे समवयस्क बालकों से रेशेस्की कुछ अधिक दुर्बल एवं छोटा जँचता था। किन्तु यही छोटा सा बालक एक रात, क़रीब बीस या तीस बड़ी आयु के शतरञ्ज के खिलाड़ियों से अकेला, एक ही समय खेला था। उन सब खिलाड़ियों को उस बालक ने परास्त किया था; केवल दो व्यक्तियों के साथ उसकी बाज़ी बराबर रही।*

इसी प्रकार एक बालक गणितशास्त्र में अत्यन्त पारदर्शी था। वह बड़े-बड़े प्रश्न यों ही ज़बानी बिना श्रम के सेकेण्डों में हल कर देता था।

ऐसे भी बालकों और बालिकाओं ने जन्म लिये हैं जिन्होंने सङ्गीत-शास्त्र में असाधारण दक्षता दिखाई है।

इन सब दृष्टान्तों से यह मानना ही पड़ेगा कि जन्म के साथ ही मनुष्य अपने-अपने विशेष-विशेष संस्कारों को लेकर ही आते हैं। पारिपार्श्विक वातावरण के कारण वेसंस्कार कहीं तो विकसित हो जाते हैं और कहीं विकसित नहीं हो पाते। हमारी सामाजिक व्यवस्था ऐसी नहीं है, जिसमें उपयुक्त व्यक्ति को योग्य अवसर प्राप्त हो सके।

---

* You and Heredity—P. 283.

इतिहास में यह भी देखा गया है कि अत्यन्त प्रतिकूल वातावरण के बीच बड़े-बड़े प्रतिभावान् व्यक्ति अपनी अन्तर्निहित जन्मगत शक्ति के आधार पर जीवन को सफल बना गये हैं। उनका व्यक्तित्व वातावरण का परिणाम नहीं था। वंशानुक्रम-विज्ञान के अध्यापकगण कहते हैं कि जेनि के विभिन्न रीति से सम्मिश्रित होने से ऐसे असाधारण प्रतिभावान् व्यक्तियों का जन्म होता है। वे पूर्व जन्म को स्वीकार नहीं करते। सम्भव है, कुछ दिनों के पश्चात् पूर्व जन्म के बारे में भी वैज्ञानिकों को कुछ तथ्य मिल जायँ।

ग्यारहवाँ परिच्छेद

विकासवाद में इच्छा-शक्ति का प्रभाव

विकासवाद के साथ वंशानुक्रम-विज्ञान का अत्यन्त घनिष्ठ सम्बन्ध है। उसका उल्लेख हमने पूर्व परिच्छेदों में कर दिया है। इस स्थान पर प्रश्न यह है कि अपने जीवनकाल में हम जिस विद्या का अर्जन करते हैं, अथवा जीवन भर में हम जो अभ्यास बना लेते हैं, उनका प्रभाव हमारी सन्तानों पर भी पड़ता है अथवा नहीं? अर्थात् अपने पूर्वजों से हम जिन जेनियों के उत्तराधिकारी बनते हैं, क्या अपने जीवनकाल में, अपने कर्मों द्वारा हम उन जेनियों में परिवर्त्तन ला सकते हैं? जेनि के परिवर्त्तित हुए बिना हमारी सन्तान कैसे हमारे कर्मों की उत्तराधिकारिणी बन सकती हैं?

अब हमें यह देखना है कि विकासवाद के साथ इन सब प्रश्नों का क्या सम्बन्ध है।—विकासवाद की थ्योरी में यह प्रश्न खड़ा होता है कि प्रकृति में विचित्रता कैसे उत्पन्न हुई? किसी एक जाति

के जीव में सर्वप्रथम परिवर्त्तन कैसे उत्पन्न हुआ? जगत्प्रसिद्ध वैज्ञानिक चार्ल्स डारविन महोदय का कहना था कि किसी न किसी कारण से प्राणी में थोड़ा-बहुत परिवर्त्तन उत्पन्न हुआ और यदि वह परिवर्त्तन वंशवृद्धि के लिए अनुकूल रहा एवं जीवन-संग्राम में विजयी होने के लिए यदि वह परिवर्त्तन लाभदायक प्रमाणित हुआ, तो जिन जीवों में वह परिवर्त्तन उत्पन्न होगा वे जीव प्रकृति में टिके रहेंगे और दूसरे जीव जीवन-संग्राम में हार जायँगे। नानारूप वातावरण के बीच जीवन बिताते समय प्राणी जब कठिनाइयों का सामना करता है, तब अपने प्रयोजन के अनुसार उस जीव में नवीन शक्तियाँ उत्पन्न होती हैं और वंशानुक्रम के नियमानुसार वे शक्तियाँ सन्तानों में भी चली आती हैं। डारविन के मतानुसार इस प्रकार एक श्रेणी के जीव से धीरे-धीरे दूसरी श्रेणी के जीव उत्पन्न हुए। नूतन जीवों में जो अधिक शक्तिशाली रहे वे तो जीवन-संग्राम में विजयी हुए, दूसरे विनष्ट हो गये। अर्थात् जो जीव जीवन-संग्राम में बच गये, वे उच्च कोटि के प्रमाणित हुए और जो विनष्ट हुए वे जीवन-संग्राम में निकृष्ट प्रमाणित हुए।

किन्तु इस युक्ति में यह दोष आ जाता है कि जिस बात को प्रमाणित करना है, उसी बात को हम पहले ही से मान लेते हैं। हम एक बार कहते हैं कि जो जीव श्रेष्ठ हैं, वे ही जीवन-संग्राम में टिक जाते हैं और दूसरी युक्ति से हम यह कहते हैं कि जीवन-संग्राम में जो जीत जाते हैं वे ही श्रेष्ठ हैं।

चार्ल्स डारविन, हर्बर्ट स्पेन्सर आदि वैज्ञानिक एवं 'वैज्ञानिक-दार्शनिकों' ने अपने पक्ष के समर्थन में अनेक दृष्टान्त उपस्थित किये हैं। हर्बर्ट स्पेन्सर ने एक यह दृष्टान्त दिया है—आस-पास के ख़रगोश किसी एक किसान का खेत खा जाया करते थे। तब उस किसान ने अपने खेत के चारों ओर तार से घेर लिया। कुछ वर्षों के बाद देखा गया कि ख़रगोश कूदकर तारों पर चढ़ते

हैं और अपनी पूँछों से तार को पकड़कर दूसरे खेत में लटक जाते हैं। इस प्रकार उस किसान के खेत में फिर ख़रगोश आने लगे और नवीन प्रयोजन और चेष्टा के कारण ख़रगोशों की पूँछों में तार पकड़ लेने की शक्ति और कौशल उत्पन्न हो गया। इसी प्रकार यह भी कहा गया है कि जो मछलियाँ पानी के नीचे अँधेरे गह्वरों में जीवन व्यतीत करती हैं, उनकी आँखें विकसित नहीं होतीं, और जिनकी आँखें हैं भी वे भी यदि अँधेरे कंदरों में रहने लग जायँ तो उनकी भी आँखें बन्द हो जाती हैं। अर्थात् व्यवहार के कारण अथवा व्यवहार में न रहने के कारण प्राणियों के अंग-प्रत्यंग बनते-बिगड़ते रहते हैं। इसी प्रकार नवीन प्रवृत्ति, प्रयोजन और चेष्टाओं के कारण जीवों में जो नवीन अंग-प्रत्यंग बनते हैं, उनकी सन्तान-सन्तति भी उन नवीन अंग-प्रत्यंगों की उत्तराधिकारी बन जाती हैं। एक प्रसिद्ध फ़्रांसीसी वैज्ञानिक लामार्क ने भी विकासवाद के मूल में प्रयोजन की अनुभूति और नवीन चेष्टा को ही प्रधान माना है।

इन वैज्ञानिकों के सिद्धान्तानुसार इस बात को स्वीकार करना पड़ता है कि जीव अपने जीवन-काल में जो शक्तियाँ अर्जन करता है उन्हें वह अपनी सन्तान को दे जा सकता है। अर्थात् जीव अपनी चेष्टाओं और कर्मों द्वारा अपने बीज-कोषों में, जर्म-प्लाज़्म में भी, परिवर्त्तन ला सकता है। अधिकांश वैज्ञानिक इस सिद्धान्त को स्वीकार नहीं करते।

डारविन और लामार्क आदि के विपरीत दूसरे वैज्ञानिक यह कहते हैं कि चीन की नारियाँ सहस्र वर्षों से अपने पैरों को बचपन से ही छोटे से जूते में बाँध रखती थीं। चीनी समाज में नारी के छोटे-छोटे पैर सौन्दर्य के लक्षण समझे जाते थे। किन्तु सहस्र वर्षों में भी छोटा पैर वंशगत लक्षण नहीं बना। यहूदियों में तथा मुसलमान सम्प्रदायों में सुन्नत करने की प्रथा

है। इस प्रथा के अनुसार पुँल्लिंगेन्द्रिय के अगले भाग का चमड़ा काट दिया जाता है। सहस्रों वर्षों से यह प्रथा चली आ रही है, किन्तु इतने दिनों की चेष्टा के बाद भी मुसलमानों और यहूदियों के बीज-कोषों में कोई परिवर्त्तन उत्पन्न नहीं हुआ। तथाकथित असभ्य जातियों में देह पर तरह-तरह की तस्वीरें बनाते हैं, वे भी वंशपरम्परा में सन्तानों में अपने से नहीं चली आतीं। अर्थात् जीवन-काल के उपार्ज्जित अभ्यास के परिणाम में बीज-कोष में कोई परिवर्त्तन नहीं होता।

एक प्रसिद्ध वैज्ञानिक ऑगास्ट वाईज़मैन महोदय ने इस विषय को लेकर बहुत परीक्षाएँ की हैं। वे बीस पुश्त तक चुहिया की पूँछ काट देते रहे; किन्तु बीस पुश्त के बाद भी चुहियों की पूँछ छोटी नहीं हुई। इसके विपरीत रूस के एक प्रसिद्ध वैज्ञानिक पैवलव ने भी इस विषय को लेकर परीक्षाएँ कीं और उन परीक्षाओं के परिणाम में उन्होंने यह कहा कि जीवन-काल के अभ्यास के परिणाम में जो संस्कार बनते हैं, वे सन्तान-सन्ततियों में भी दिखाई देते हैं। इसके उत्तर में दूसरे वैज्ञानिकों ने यह कहा कि पैवलव की थ्योरी के अनुसार उनकी इस नवीन परीक्षा के परिणाम में कुछ असमञ्जस पड़ता है। कंडिशंड रिफ़लेक्स थ्योरी के अनुसार स्नायु-मण्डली की कार्य-प्रणाली एक विशेष धारा में अथवा मार्ग से सञ्चालित होती रहती है। किसी एक विशेष समय में घण्टी की आवाज़ की जाती है और उसी समय एक कुत्ते को आहार-सामग्री भी दी जाती है। इस प्रकार कुछ दिनों के पश्चात् निर्धारित समय पर घण्टी तो बजाई जाती है किन्तु आहार-सामग्री नहीं दी जाती। इस अवस्था में आहार-सामग्री के न रहने पर भी कुत्ते की जिह्वा से लार टपकती है। अर्थात् एक निर्धारित समय पर घण्टी बजने के साथ जिह्वा से लार टपकने का कोई साक्षात् सम्बन्ध नहीं है; किन्तु एक विशेष रूप के

अभ्यास के कारण घण्टी बजने के साथ-साथ कुत्ते की जिह्वा से लार टपकने लगती है। इस प्रकार की लार टपकने को कंडिशंड रिफ़्लेक्स कहते हैं। पैवलव महोदय ने तीस पीढ़ियों तक अपने जीवों को लेकर परीक्षा की। उन परीक्षाओं के परिणाम में पैवलव ने देखा कि तीस पीढ़ियों के बाद उनके जन्तु उनकी दी हुई शिक्षा को पूर्वापेक्षा और शीघ्र सीख लेते थे। अर्थात् कंडिशंड रिफ़्लेक्स के सिद्धान्तानुसार जिस कार्य के होने में स्नायु-मण्डलों की कार्य-प्रणाली एक विशेष मार्ग पर सञ्चालित होती है, तीस पीढ़ियों की शिक्षा के पश्चात् वह बात नहीं रह गई। इसका तात्पर्य यह होता है कि प्राणियों के व्यवहार की व्याख्या के लिए कंडिशंड रिफ़्लेक्स की थ्योरी की कोई आवश्यकता नहीं है। इस प्रकार पैवलव की दो प्रकार की परीक्षाओं के परिणाम का प्रयोग एक दूसरे के विरुद्ध किया जा सकता है। इसके अतिरिक्त दूसरे वैज्ञानिकों का यह भी कहना है कि पैवलव के जन्तुओं में शिक्षा ग्रहण करने की शक्ति बढ़ नहीं गई, वरन् पैवलव और उनके साथियों में ही शिक्षा-दान करने की शक्ति बढ़ गई।

पैवलव के अतिरिक्त अध्यापक मैक्डुगल ने भी चूहों पर दूसरे प्रकार की परीक्षा की। यह परीक्षा भी कई पीढ़ियों तक हुई। मैक्डुगल के कथनानुसार यह प्रमाणित होता है कि जीव के अपने जीवन-काल में जो नवीन संस्कार उत्पन्न होते हैं, उन संस्कारों को उत्तराधिकार-सूत्र से उस जीव की सन्तानें भी प्राप्त करती हैं। दूसरे वैज्ञानिक मैक्डुगल साहब की परीक्षाओं को स्वीकार नहीं करते।

क्या मद्यपायी मनुष्य की सन्तान भी मद्यपायी होगी? इस प्रश्न को लेकर भी बहुत परीक्षाएँ हुई हैं। किन्तु मनुष्यों को लेकर परीक्षा करना सम्भव नहीं। दूसरे निकृष्ट जीव-जन्तुओं पर नाना प्रकार की परीक्षाएँ हुई हैं। वैज्ञानिकों ने कई पीढ़ियों तक खरगोश, गीनि-पिग, चूहे आदि-आदि जन्तुओं को शराब पिलाकर

देखा है कि उनके जेनि में कोई परिवर्त्तन नहीं हुआ। स्त्री-जन्तुओं को मद्य पिलाकर देखा गया कि उनके बच्चे भ्रूण अवस्था में ही अधिकांश विनष्ट हो गये, किन्तु जो जीवित रहे वे दूसरे बच्चों से अधिक बलिष्ठ हुए।* किन्तु पण्डित व्लुहम ने जो परीक्षाएँ की हैं, उनसे यह ज्ञात होता है कि जब बहुत दिनों से चूहों को मद्य पिलाया जाता है और उनसे ऐसी चुहियों के साथ जोड़ा लगाया जाता है जिन्हें शराब नहीं पिलाई गई है, तो चुहियों की अपेक्षा चूहे अधिक जन्म लेते हैं; किन्तु जब चूहा और चुहियाँ, दोनों को ही अत्यधिक मात्रा में शराब पिलाई जाती है तब उनकी सन्तान को बहुत आघात पहुँचता है; भ्रूणावस्था में ही बहुतों की मृत्यु हो जाती है और जो सन्तान जन्म लेती भी हैं वे दूसरों की अपेक्षा दुर्बल होती हैं और कभी-कभी विकलांग भी होती हैं। किन्तु इस स्थान पर एक बात का स्मरण रखना अत्यन्त आवश्यक है। इन परीक्षाओं में चूहा-चुहियों को जिस अत्यधिक मात्रा में शराबी बनाया जाता है, मनुष्य में इतनी शराब पीनेवाले एक भी व्यक्ति का मिलना कठिन है। इस प्रकार अत्यधिक मद्य के प्रभाव से ही जेनि में परिवर्त्तन उत्पन्न होते हैं। इस परिवर्त्तन को जीव के लिए कल्याणकारी भी नहीं समझ सकते। जेनि के इस प्रकार परिवर्त्तित हो जाने को पारिभाषिक शब्द में म्यूटेशन (Mutation) कहते हैं।† आगे चलकर म्यूटेशन के बारे में विस्तृत आलोचना की जायगी। इस स्थान पर एक और दृष्टान्त का उल्लेख कर देना आवश्यक है। इस बात को कोई भी वैज्ञानिक अस्वीकार नहीं कर सकता कि व्यक्तियों में दो प्रकार के जेनि रह सकते हैं, एक डॉमिनान्ट (Dominant) अर्थात् व्यक्त, और

---

* देखिए—You Heredity. P 328

† देखिए—Human Heredity. Pp. 9, 99.

दूसरा रिसेसिव (Recessive) अर्थात् सुप्त। जिस शारीरिक आवेष्टन में एक प्रकार का जेनि क्रियाशील रह सकता है, उसी आवेष्टन में, दूसरे प्रकार का जेनि भी, अव्यक्त, किन्तु जीवित एवं अविकृत रूप से रह सकता है। श्वेत शरीरवाले जीव की देह में कृष्ण वर्ण उत्पन्न करनेवाला जेनि वर्षों तक रहने पर भी उसमें कोई परिवर्त्तन उत्पन्न नहीं होता।

म्यूटेशन और विकासवाद—विकासवाद की थ्योरी में, नवीन की उत्पत्ति कैसे होती है, इस प्रश्न का अत्यन्त महत्त्व है। किन्तु इस प्रश्न का उत्तर आज तक प्राप्त नहीं हुआ है। अध्यापक मॅरगन् और अध्यापक मूलर महोदयों ने 'एक्स रे' आदि किरणों के आघात से जेनि में नाना प्रकार के परिवर्त्तन उत्पन्न किये हैं। प्रायः सभी आधुनिक वैज्ञानिक म्यूटेशन के आधार पर विकासवाद की व्याख्या करना चाहते हैं। "एक्स रे" के अतिरिक्त एक और प्रकार की किरणें हैं, जिनका पारिभाषिक नाम 'कॉसमिक रेज़' है। ये किरणें कहाँ से आती हैं, इसका आज भी निर्णय नहीं हो पाया है। ये किरणें समतल भूमि की अपेक्षा पहाड़ों में एवं आकाश के उच्च स्तरों में अधिक घन रूप से निपतित होती हैं। हवाई जहाज़ों पर केले पर की मक्खियों को आकाश में १३ मील ऊपर ले जाया गया था। उस उच्च-आकाश में, समुद्र के स्तर की अपेक्षा पाँचगुना अधिक म्यूटेशन होता है।—किन्तु अनेक वैज्ञानिक म्यूटेशन के आधार पर विकासवाद की व्याख्या सफल नहीं समझते। उसका प्रथम कारण यह है कि म्यूटेशन से, अधिकांश समय, प्राणियों का विकास नहीं हो सकता; अधिकांश समय म्यूटेशन के कारण विकलाङ्ग प्राणियों की उत्पत्ति होती है; जीवन-संग्राम में वे विजयी नहीं हो सकते। कदाचित् सहस्रों में एकआध बार म्यूटेशन के परिणाम में उच्चतर जीव की उत्पत्ति होती हो। किन्तु इस उच्चतर जीव से अपनी

श्रेणी के जीव की उत्पत्ति कैसे हो ? कारण विवाह के परिणाम में इस उच्चतर जीव का वंश निम्न दिशा की ओर अधः-पतित हो सकता है।

अधिकांश समय म्यूटेशन के कारण जीव-देह में जेनि का संख्या पूर्वापेक्षा कम हो जाती हैं। किस कारण म्यूटेशन उत्पन्न होते हैं, इसका अभी तक कोई ज्ञान प्राप्त नहीं हुआ है। प्रकृति में अकस्मात् म्यूटेशन उत्पन्न हो जाते हैं।

म्यूटेशन प्रायः तीन प्रकार के होते हैं;—(१) फैक्टर म्यूटेशन उसे कहते हैं, जहाँ क्रॉमोसोम के जेनि में परिवर्त्तन उत्पन्न हो जाते हैं। (२) दूसरे प्रकार के परिवर्त्तन, क्रॉमोसोमों के दुगुने अथवा तीन गुने हो जाने के कारण उत्पन्न होते हैं। (३) तीसरे प्रकार का म्यूटेशन वह है, जहाँ विभिन्न क्रॉमोसोमों के जेनि में बहुत प्रकार के लेन-देन हो जाते हैं;—इस प्रकार के परिवर्त्तन की रीति को कम्बि-नेशन, अर्थात् विभिन्न प्रकार के सम्मिश्रण एवं म्यूटेशन के बीच का एक प्रकार कहा जा सकता है।

इन तीनों प्रकार के म्यूटेशनों में से प्रथम प्रकार का म्यूटेशन, जिसके कारण प्रकृति में यथार्थ नवीन की उत्पत्ति होती है, जीव की क्रमोन्नति के लिए अधिकांश समय हानिकारक ही होता है। जो हो, अधिकांश वैज्ञानिक यह समझते हैं कि विकासवाद की व्याख्या केवल म्यूटेशन के आधार पर ही सम्भव है, अन्यथा नवीन की कैसे उत्पत्ति होती है, इस समस्या की मीमांसा सम्भव नहीं।

ह्युगो डी० व्राइस ने ही सर्वप्रथम म्यूटेशन के सिद्धान्त को व्याख्या की थी। इसके पूर्व पण्डित वाइज़मैन ने इस सिद्धान्त का प्रचार किया था कि बीज-कोष में, अर्थात् जर्मप्लाज़्म में, बाहरी कारणों से कोई परिवर्त्तन नहीं हो सकता।

इनके विपरीत ई० डब्ल्यू० मैकब्राइड, ई० एस० रसेल, डबल्यू० मैकडुगल आदि दूसरे बड़े-बड़े वैज्ञानिक इस सिद्धान्त के पक्षपाती

हैं कि जीव, अपने जीवनकाल में, अपनी इच्छा और चेष्टा के कारण अपनी देह में ऐसे परिवर्त्तन ला सकता है कि उसके सन्तान भी उन परिवर्त्तनों के उत्तराधिकारी बन सकते हैं।

वाइज़मैन महोदय ने अपने पक्ष के समर्थन में दो प्रकार की युक्तियाँ उपस्थित की थीं। उनकी एक युक्ति यह थी कि अभ्यास के कारण देह में अर्थात् जीव-कोषों में जो परिवर्त्तन उपस्थित होते हैं, वे फिर किस प्रकार बीजकोषों में (अर्थात् जर्मप्लाज़्म में) भी संक्रामित किये जा सकते हैं? अर्थात् जीव-कोषों के परिवर्त्तनों से कैसे बीज-कोषों में भी परिवर्त्तन उत्पन्न होते हैं, इसका कोई लक्षण अथवा परिचय हमें प्राप्त नहीं है। उनकी दूसरी बात यह थी कि चूहों की पूँछ काट-काटकर, ३० पीढ़ियों में भी, उन्होंने चूहों में छोटी पूँछवाले चूहों को उत्पन्न नहीं कर पाया। मैकब्राइड इसके उत्तर में यह कहते हैं कि पूँछ काट लेने से प्राणी में कोई अभ्यास तो बनता नहीं। जब किसी नवीन परिस्थिति में, अपनी चेष्टाओं के कारण, प्राणी में कोई नवीन अभ्यास उत्पन्न होता है, तो उसी अभ्यास के कारण ही जीव के बीज-कोषों में परिवर्त्तन उत्पन्न हो सकता है, अन्यथा नहीं। इसी प्रकार सुन्नत करने की प्रथा से भी किसी अभ्यास की उत्पत्ति नहीं होती है। उक्त प्रथा के कारण मनुष्यों को किसी प्रकार का नवीन अभ्यास डालने की कोई आवश्यकता नहीं होती है। इस कारण वाइज़मैन की परीक्षा से यह प्रमाणित नहीं होता है कि नवीन परिस्थितियों में, अभिनव उद्यम के कारण, नवीन अभ्यास के परिणाम में, मनुष्य के बीज-कोषों में भी परिवर्त्तन उत्पन्न हो जाते हैं—यह सिद्धान्त भ्रमात्मक है। वाइज़मैन की प्रथम युक्ति के उत्तर में मैकब्राइड महोदय कहते हैं कि माता-पिता से प्राप्त क्रॉमोसोमों से कैसे जीव के अंग-प्रत्यंग बनते हैं, इसका भी ज्ञान आज हमें प्राप्त नहीं है, यद्यपि क्रॉमोसोमों से ही जीव-देह का प्रत्येक अंग-प्रत्यंग बनता है, इसमें कोई सन्देह नहीं है।

मैकब्राइड आदि वैज्ञानिकों की राय में, म्यूटेशन के सिद्धान्त से भी विकासवाद अर्थात् क्रमोन्नतिवाद की व्याख्या युक्ति-संगत नहीं प्रतीत होती है। इन वैज्ञानिकों का कहना है कि म्यूटेशन तो रोग से ही उत्पन्न होता है। मैकब्राइड आदि वैज्ञानिकों की राय में ह्यूगो डी० व्राइस की परीक्षाएँ त्रुटि-पूर्ण हैं।

टर्नियर नाम के वैज्ञानिक ने अपनी नवीन परीक्षाओं के आधार पर यह प्रमाणित करने की चेष्टा की है कि आभ्यन्तरिक दुर्बलता के कारण कभी-कभी बीजकोषों में भी दुर्बलता उत्पन्न होती है। इसी दुर्बलता के कारण बीज-कोषों में भी परिवर्त्तन उत्पन्न हो जाते हैं। ऐसे परिवर्त्तन को ही म्यूटेशन कहा जाता है। म्यूटेशन के कारण जीव की उन्नति न होकर अधिकांश समय उसकी अवनति ही होती है। बहुवर्षव्यापी परीक्षाओं के आधार पर टर्नियर उक्त सिद्धान्त पर पहुँचे हैं। अभी ये परीक्षाएँ समाप्त नहीं हुई हैं। इस बात को तो सभी वैज्ञानिक स्वीकार करते हैं कि म्यूटेशन के कारण अधिकांश समय प्राणी की अवनति होती है। अर्थात् म्यूटेशन उन्नति का लक्षण नहीं है।

लामार्क, डारविन आदि कुछ पहले के वैज्ञानिक एवं वर्त्तमान काल के जीवित वैज्ञानिक—मैकडुगल, मैकब्राइड, ई० एस० रॉसेल आदि इस पक्ष का समर्थन करते हैं कि जीव, अपने जीवनकाल में, अपनी चेष्टा एवं अभ्यास के कारण अपने बीज-कोषों में परिवर्त्तन ला सकते हैं; किन्तु ये परिवर्त्तन इतने सूक्ष्म एवं अल्प होते हैं कि इनके प्रभाव के स्पष्ट रूप से प्रकटित होने में कई पीढ़ियाँ लग जाती हैं। इस कारण साधारणतया यही कहना पड़ता है कि वातावरण के कारण जीव में जो स्थायी परिवर्त्तन उत्पन्न होता है, उसकी अपेक्षा पूर्वजों से प्राप्त जेनि के आधार पर वंशानुक्रम की धारा का ही मनुष्यों में अधिक प्रभाव है। व्यवहार में, वातावरण की अपेक्षा वंशानुक्रम का ही प्रभाव, मनुष्य पर अधिक देख पड़ता है। एक वैज्ञानिक के मतानुसार मनुष्य पर शिक्षा-दीक्षा, सामाजिक रीति-

नीति, जलवायु आदि पारिपार्श्विक वातावरण का प्रभाव प्रतिशत दस (१०) और वंशानुक्रम की धारा का प्रभाव प्रतिशत नब्बे (९०) होता है।

अत्यधिक मद्यपान से भी बीजकोषों में परिवर्त्तन उत्पन्न हो जाता है और उससे वंश की अधोगति होती है। अत्यधिक मद्य-पायियों की सन्तान साधारणतया रोगी, मूर्ख आदि होती हैं। स्त्रियों पर मद्यपान का और भी बुरा प्रभाव पड़ता है।

बारहवाँ परिच्छेद

वंशानुक्रम और स्वास्थ्य

जीवित और जड़ वस्तु में यही अन्तर है कि जीवित वस्तु अपने पारिपार्श्विक वातावरण से, अपने जीवनधारण के अनुकूल रस और पदार्थ संग्रह करती रहती है, एवं प्रतिकूल वातावरण से बचती रहती है। जड़ पदार्थ में इस प्रकार वातावरण के साथ उसका न कोई संघर्ष होता है, और न कोई लेन-देन। फलतः पारिपार्श्विक वातावरण के साथ जीव का जिस दिन लेन-देन समाप्त हो जाता है, उस दिन उसकी मृत्यु हो जाती है।

जीव के लिए पूर्ण रूप से स्वस्थ होने का अर्थ है, पारिपार्श्विक वातावरण के साथ उसका परिपूर्ण सामञ्जस्य स्थापित होना। इस सामञ्जस्य में जितनी कमी रह जाती है, जीव के पूर्ण रूप से स्वस्थ होने में भी उतनी कमी रह जाती है। इस दृष्टि से कोई भी एक व्यक्ति पूर्ण रूप से स्वस्थ नहीं है, कारण पारिपार्श्विक वाता-वरण के साथ किसी जीव का परिपूर्ण सामञ्जस्य नहीं है। कोई जीव, इस दृष्टि से, दूसरे जीव से अधिक स्वस्थ है, और कुछ अन्य जीवों से कम। इस सिद्धान्त के अनुसार, जीव-विज्ञान की दृष्टि से, स्वास्थ्य एवं रोग में कोई विभाजक रेखा खींचना कठिन है।

जिस समय जीव के साथ पारिपार्श्विक वातावरण का सामञ्जस्य स्थापित नहीं हो पाता है और जीव के लिए प्राण धारण करना

कठिन हो जाता है, उस समय कहा जाता है कि जीव रोग-ग्रस्त हो गया है। जीवन-धारण के लिए कुछ साधारण-सी असुविधा हो जाने को रोग नहीं कहा जायगा। यथा—यदि हम फूलों के रङ्ग को ठीक-ठीक पहचान नहीं पाते तो उससे जीवनधारण करने में विशेष कठिनाई नहीं होती है। इस कारण इसे दोष कह सकते हैं। किन्तु इसे रोग कहना ठीक नहीं होगा। सर्वप्रथम एक रूस के वैज्ञानिक ने ई० सन् १८९५ में स्वास्थ्य के विषय में स्पष्ट रूप से पारिपार्श्विक वातावरण के साथ सामञ्जस्य की बात कही थी। किन्तु इस सामञ्जस्य का अर्थ जीवित रहना और अच्छी तरह जीवित रहना होगा।

स्वास्थ्य का एक और भी तात्पर्य है। किसी व्यक्ति में यदि सन्तान-उत्पादन की शक्ति न रहे तो उस व्यक्ति को सभी रोगी कहेंगे। किन्तु सन्तान उत्पादन करने की शक्ति न रहने से जीवन-धारण करने में कोई कठिनाई नहीं होती; इस कारण एक जर्मन वैज्ञानिक का कहना है कि जीवित रहने का अर्थ केवल व्यक्ति के लिए न समझकर जाति के लिए समझना उचित है। प्रकृति में भी व्यक्ति से जाति का ही अधिक महत्त्व है। गर्भयन्त्रणा से पीड़ित होकर जब नारी शय्याशायी होती है, तब उसे कोई भी रोगी नहीं समझता। जाति के जीवित रहने के लिए नारी की यह गर्भ-यन्त्रणा सार्थक हो जाती है। वंश-वृद्धि से ही जातीय जीवन की रक्षा होती है।

तेरहवाँ परिच्छेद

वंशानुक्रम और रोग

व्यक्ति के साधारण स्वास्थ्य के लिए बहुसंख्यक जेनि का सम्मिलित प्रभाव क्रियाशील रहता है। किन्तु किसी रोग की उत्पत्ति के लिए कभी-कभी एक जेनि का ही प्रभाव दिखाई देता है।

अनेक परीक्षाओं के परिणाम में यह निश्चय हो पाया है कि कुछ रोग तो हम माता-पिता से प्राप्त करते हैं, और कुछ नहीं।

जो रोग हम माता-पिता से प्राप्त करते हैं, उन्हें तो वंशगत रोग कह सकते हैं; दूसरे रोगों को नहीं।

ऐसा भी होता है कि माता-पिता से हम यथार्थ रोग को प्राप्त न होकर, रोगी होने की दुर्बलता को प्राप्त करते हैं। अपने अनुकूल वातावरण में तो वह रोग परिस्फुट हो पड़ता है, अन्यथा वह प्रकट नहीं होता। यदि हमारे पिता को तपेदिक़ की बीमारी हुई हो तो यह आवश्यक नहीं है कि हमें भी अर्थात् हमारे भाई-बहिनों में से किसी न किसी को भी वह बीमारी हो। केवल इतना होगा कि छूत के कारण अथवा सर्दी के या शरीर के दुर्बल हो जाने के कारण हममें से किसी को वह रोग हो जाय। प्रतिदिन की परीक्षा के परिणाम में हमें यह ज्ञात होता जाता है कि कौन से रोग हमें माता-पिता अथवा वंश-परम्परा से प्राप्त होते हैं, और कौन से नहीं।

उपदंश हम कभी वंश-सूत्र से प्राप्त नहीं करते। इस बारे में साधारण व्यक्ति की धारणा एकदम भ्रमात्मक है। होता यह है कि यदि माता अथवा पिता उपदंश-रोग से पीड़ित हों और उस पीड़ित अवस्था में ही गर्भ का सञ्चार हो, तब छूत के कारण बच्चे में भी उपदंश रोग की उत्पत्ति हो सकती है; अन्यथा नहीं। गर्मी का रोग अच्छा हो जाने पर यदि गर्भ की उत्पत्ति होती है तब कदापि बच्चे में गर्मी का रोग नहीं दिखाई देगा। यदि यह रोग वंश-परम्परा में उत्पन्न होनेवाला होता तो अच्छे हो जाने पर भी मनुष्य की सन्तान में यह रोग उत्पन्न हो सकता। किन्तु ऐसा नहीं होता। वंशगत रोग और छूत के कारण जो रोग उत्पन्न होते हैं, उनमें यथेष्ट अन्तर है। यदि उपदंश रोग को ठीक समय पर उपयुक्त चिकित्सा हो एवं इस रोग की छूत से बचने के उपायों का ठीक-ठीक प्रयोग हो तो दो-तीन पीढ़ियों के अन्दर यह रोग सदा के लिए दूर हो जा सकता है। किन्तु वंशगत रोगों को दूर करना अत्यन्त कठिन कार्य है। वंशगत रोगों के मूल में तो विशेष-विशेष

जेनि क्रियाशील होते हैं। इन रोगों से बचने के लिए विवाह-पद्धति पर विशेष रूप से नियन्त्रण की आवश्यकता है। इस कारण कौन से रोग वंशगत हैं और कौन से नहीं, इसका ज्ञान होना अत्यन्त आवश्यक है। वर्षों से इस विषय पर परीक्षाएँ हुई हैं और अब बहुत रोगों के विषय में अच्छा ज्ञान प्राप्त हो चुका है।

एलविनिज़्म अर्थात् धवल रोग वंशगत हुआ करता है। सात सौ घरों के वंश-वृक्ष बनाये गये हैं, जिनमें धवल रोग उत्पन्न हुए थे। धवल रोग "सुप्त-लक्षण"-विशिष्ट है। पाठकों को याद होगा कि सुप्त (Recessive) एवं व्यक्त (Dominant) लक्षण किसे कहते हैं। जब किसी व्यक्ति की देह में दो भिन्न प्रकार के जेनि उपस्थित रहते हैं, जिनमें एक दूसरे के विपरीत लक्षण रहते हैं, तब एक लक्षण तो व्यक्त होता है और दूसरा सुप्त रह जाता है। किन्तु यह सुप्त-लक्षण मरता नहीं, कई पीढ़ियों के बाद भी, अपने अनुरूप दूसरे जेनि के साथ सम्मिलित होते ही व्यक्त हो जाता है। धवल रोग भी रिसेसिव अर्थात् सुप्त-लक्षण-ग्राहक जेनि के कारण उत्पन्न होता है। जिस वंश में किसी सुप्त-लक्षण-बीज वहन करनेवाले जेनि के कारण किसी रोग की उत्पत्ति होती हो, उस वंश में यदि निकट आत्मीयों में विवाह होता रहे, तो दो रिसेसिव जेनि के एकत्र हो जाने की बहुत सम्भावना हो जाती है। और दो रिसेसिव जेनि के एकत्र होने से ही रोग व्यक्त हो जाता है। इस कारण साधारणतया निकट आत्मीयों में विवाह करना कदापि उचित नहीं है। एलविनिज़्म् अर्थात् धवल-रोग-युक्त वंशों के वंशवृक्षादि की परीक्षा करने पर यह ज्ञात हुआ है कि अधिकांश समय उन वंशों में निकट आत्मीयों में विवाह हुए थे। एक ऐसे वंश-वृक्ष के अनुसार यह देखा गया कि एक चाचा ने अपनी भतीजी से विवाह कर लिया था। उसके वंश में छः सन्तानों में दो तो रोग-मुक्त थे, किन्तु चार धवल रोग-युक्त थे। उसी वंश में दो चचेरे भाई-बहिनों ने विवाह कर लिया

था। उनके तीन सन्तानों में से एक धवल-रोग-विशिष्ट था। उसी वंश में दूसरे लोगों ने आपस में विवाह नहीं किया था। उनकी सन्तानों में एक भी सन्तान धवल-रोग-विशिष्ट नहीं थी।

निकट-दृष्टिरोग (Short-sightedness) वंशानुक्रम से उत्पन्न होता है। चक्षु के एक और रोग आस्टिगमैटिज़्म (Astigmation) की उत्पत्ति भी वंशानुक्रम के अनुसार होती है। एक वंश में तो यह रोग पाँच पुश्तों तक उत्पन्न होता गया।

संसार के विभिन्न स्थानों में मनुष्य विभिन्न आकार-विशिष्ट होते हैं। किन्तु मनुष्य-देह के साधारण अवयवों में थोड़ा-बहुत अन्तर होने पर भी कुछ विशेष हानि नहीं होती। हाँ, यदि चक्षु के आभ्यन्तरिक अंशों में थोड़ा-सा भी अन्तर उत्पन्न हो जाता है तो दृष्टि-शक्ति में भी अत्यन्त गम्भीर दोष उत्पन्न हो जाते हैं। इस कारण यदि संसार की दो विभिन्न जातियों के स्त्री-पुरुषों में विवाह होता है, तो निकट दृष्टिरोग की उत्पत्ति हो सकती है। जैसे निकट सम्बन्धियों में विवाह होने से वंश में रोगों की उत्पत्ति हो सकती है, उसी प्रकार दो विभिन्न जातियों के स्त्री-पुरुषों में विवाह होने से भी रोगों की उत्पत्ति हो सकती है। एक दूसरे प्रकार का चक्षु का रोग चार परिवारों में होते देखा गया। अनुसन्धान करने पर यह पता चला कि सात पीढ़ी पहले इन परिवारों के एक ही पूर्वज को यह रोग था; अर्थात् सात पुश्त तक रोग के बीज किसी परिवार में वंश-परम्परा से चले आ सकते हैं। इसका यह भी तात्पर्य है कि अच्छे और बुरे के बीज, सात पुश्त तक तो अवश्य ही जीवित रह सकते हैं, यद्यपि उनका व्यक्त होना पारिपार्श्विक वातावरण और दूसरे जेनि के साथ सम्बन्ध स्थापित होने पर निर्भर करता है। प्राचीन हिन्दुओं को यह ज्ञान कैसे प्राप्त हुआ—यह स्वतन्त्र प्रश्न है। किन्तु इसमें कोई सन्देह नहीं कि हिन्दुओं की वर्ण-व्यवस्था का आधार वंशानुक्रम-विज्ञान ही था।

हिन्दुओं के धारणानुसार ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य आदि वर्णों के लक्षण कई पीढ़ियों तक अभिव्यक्त न होने पर भी नष्ट नहीं होते। आधुनिक विज्ञान भी इस बात का समर्थन करता है। इस प्रकार का आधुनिक विज्ञान का प्राचीन विज्ञान से मेल होना एक आकस्मिक घटना नहीं है।—मोतियाबिन्द भी एक और चक्षुरोग है जो वंशानुक्रम से उत्पन्न होता है। मोतियाबिन्द के उत्पन्न होने की अवस्था भी प्रत्येक परिवार के लिए कुछ निश्चित सी रहती है। किसी-किसी परिवार में बाल्यावस्था में ही यह रोग उत्पन्न होते देखा गया है। दूसरे परिवारों में यौवनावस्था के प्रारम्भ होते ही यह रोग उत्पन्न होता है। कुछ परिवारों में मध्यवयस् में ही यह रोग उत्पन्न होते देखा गया है। इस सम्बन्ध में एक और रहस्यपूर्ण बात का पता चला है। किसी परिवार में ऐसा होते देखा गया है कि एक पुश्त में तो मोतियाबिन्द वृद्धावस्था में उत्पन्न हुआ; दूसरी पुश्त में यह रोग ४० वर्ष की आयु में उत्पन्न हुआ; तीसरी पुश्त में ३० वर्ष की आयु में; ४ थी पुश्त में यह रोग ७ वर्ष की आयु में उत्पन्न हुआ एवं ५वीं पुश्त में, जन्म के थोड़े ही दिनों के अन्दर यह रोग होते देखा गया। एक वैज्ञानिक ने उपर्युक्त वंशवृत्त को वैज्ञानिकों के सम्मुख उपस्थित किया था। वैज्ञानिकों में इस विषय को लेकर यथेष्ट आलोचनाएँ हुई थीं। कुछ वैज्ञानिकों की धारणा थी कि उक्त वंशवृत्त के संग्रह करने में कुछ दोष रह गया है। एक ब्रिटिश वैज्ञानिक ई० नेटल-शिप महोदय ने एक परिवार का वंशवृत्त संग्रह किया था, जिसमें रतौंधी की बीमारी ९ पुश्त तक होती गई थी। उक्त परिवार में २११६ व्यक्तियों में से १३५ को रतौंधी हुई थी। एक और विचित्र प्रकार का रोग होता है, जिसमें दिन में अथवा अधिक तीव्र प्रकाश में तो दिखाई नहीं देता किन्तु चाँदनी रात में दिखाई देता है। इस रोग में रोगी व्यक्ति को रङ्ग का कोई ज्ञान नहीं होता है।

इसे दिवान्धता (Day Blindness) कहते हैं। एक वंश में चचेरे भाई-बहिनों में विवाह होने के परिणाम-स्वरूप चार सन्तानों में तीन सन्तानों को यह रोग हो गया था। यह रोग भी वंश-गत होता है। इससे ज्ञात होगा कि निकट सम्बन्धियों में विवाह करना कितना भयावह है।

गञ्ज भी वंशगत है। यह अनेक कारणों से उत्पन्न होता है। कभी-कभी मस्तक के चर्म से अत्यधिक तैल पदार्थ निकलता है और उसके पश्चात् बाल गिरने लग जाते हैं। कभी-कभी मस्तक में अत्यधिक फ्यास हो जाने के पश्चात् बाल गिरने लग जाते हैं और गञ्जापन उत्पन्न हो जाता है। गञ्जापन स्त्री की अपेक्षा पुरुष में अधिक उत्पन्न होता है। यह भी कहा जाता है कि नपुंसकों को यह रोग नहीं होता।

कैन्सर—इस रोग के नाम को सुनते ही मन में एक आतङ्क की सृष्टि होती है। 'कैन्सर' रोग को समझने के लिए हमें फिर कोष-विभाजन के प्रति ध्यान देना पड़ेगा। हमने यह देखा है कि एक कोष से ही सहस्र कोषों की उत्पत्ति होती है और उन कोषों से धीरे धीरे हमारी देह बनती है। हमने यह भी देखा है कि अमेरिका के एक प्रसिद्ध वैज्ञानिक एलेक्सिस कैरेल ने कैसे जावदेह से एक-एक अङ्ग को निकाल कर उसे काँच के बोतलों में जीवित रक्खा है। कैरेल महोदय ने यह प्रमाणित कर दिया है कि जीव-देह के कोष, देह से अलग होकर न केवल जीवित ही रह सकते हैं, वरन् आहार मिलने पर एवं उपयुक्त वातावरण में रक्खे जाने से वे जीवित रहने के साथ-साथ वृद्धि भी करते हैं। उनके जीवित रहने की एवं वृद्धि प्राप्त होने की सीमा भी नहीं है। किन्तु जीव-देह में रहते समय वे कोष अनियमित रूप से वृद्धि प्राप्त नहीं करते। प्रयोजनानुसार वे एक सीमा तक ही वृद्धि प्राप्त करते हैं। इस नियन्त्रण का केन्द्र कहाँ है और कैसे यह नियन्त्रण होता है, ये सब

पर खोज कर रहे हैं। कुछ डाक्टरों का यह भी कहना है कि जिस वंश में बहुमूत्र रोग होगा उस वंश में तपेदिक़ की बीमारी उत्पन्न होने की विशेष सम्भावना रहती है।

चौदहवाँ परिच्छेद

निकट सम्बन्धियों में विवाह

टेलिजॉनी—जनसाधारण की यह धारणा है कि गर्भावस्था में यदि नारी के मन पर किसी कारण किसी प्रकार की प्रबल छाप पड़ जाती है, तो उसका प्रभाव उसकी सन्तान में भी दिखाई पड़ता है। इस विषय को लेकर बहुत परीक्षाएँ हुई हैं; किन्तु वैज्ञानिकगण आज इस बात को स्वीकार नहीं करते। किन्तु यह भी हम नहीं भूल सकते कि भ्रूण को, माता के जठर में बहुत दिनों तक रहना पड़ता है और इस बीच माता पर पारिपार्श्विक वातावरण का प्रभाव भी अवश्य ही पड़ता है। इसलिए यह भी सम्भव नहीं कि उस प्रभाव के कारण माता में तथा भ्रूण में भी कुछ परिवर्त्तन न होता हो। पशुपालकों में तथा साधारण जनता में भी यह धारणा बहुत प्रचलित है कि एक बार स्त्री से पुरुष का संयोग हो जाने से, स्त्री में इतना परिवर्त्तन हो जाता है कि दूसरे पुरुष से सन्तान उत्पन्न होने पर पहले पुरुष का कुछ प्रभाव उसमें भी दिखाई देता है। इसी को अँगरेज़ी में टेलिजॉनी कहते हैं।

मैथुन के पश्चात् स्त्री यदि गर्भवती नहीं भी होती है, तथापि पुरुष के वीर्य का कुछ अंश स्त्री की योनि में रह जाता है एवं कालक्रम से वह अंश स्त्री की देह में मिल जाता है। इस प्रकार प्रति मैथुन के पश्चात् पुरुष की देह से निःसृत कुछ अंश स्त्री-देह का अंश बन जाता है। डा० मेरी स्टोप्स् ने भी इस बात पर

ज़ोर दिया है कि पुरुष-देह से निःसृत वीर्य आदि मैथुन के पश्चात् स्त्री की देह में सम्मिलित हो जाते हैं। इस प्रकार पुरुष और स्त्री की देह धीरे-धीरे एक दूसरे के सदृश बनती जाती है।

——

पन्द्रहवाँ परिच्छेद

मनुष्यों पर वंश और वातावरण का प्रभाव

अमेरिका के 'न्यूजर्सी' शहर में मानसिक रोगों का एक चिकित्सालय है। ई० सन् १८९८ में इस चिकित्सालय के डा० एच० एच० गडार्ड महोदय अकस्मात् दो परिवारों के सम्पर्क में आये। एक ही पूर्वज के ये दोनों वंश थे, फिर भी इनमें विषमता थी। एक परिवार के व्यक्ति सच्चरित्र, बुद्धिमान् एवं धनी थे, दूसरे परिवार के व्यक्ति असच्चरित्र, लम्पट, शराबी और चोर थे। डा० गडार्ड महोदय ने इन दोनों परिवारों को 'कल्लीकॉक' नाम दे दिया। "कल्लीकॉक" शब्द का अर्थ है—'भला बुरा'। बहुत अनुसन्धान के बाद गडार्ड महोदय को पता चला कि ये दोनों परिवार एक सैनिक के वंशज हैं। उसका नाम मार्टिन था। अमेरिका के गृह-युद्ध के समय मार्टिन ने एक सराय में एक दुर्बल चित्त की नारी के साथ प्रसङ्ग किया था। उस नारी से एक सन्तान उत्पन्न हुई। यह पुत्र बहुत बुरा निकला। आसपास के व्यक्ति उससे तङ्ग आ गये थे। इसी सन्तान के वंश में जितनों का जन्म हुआ, वे सबके सब दुराचारी निकले। किन्तु उस गृह-युद्ध के पश्चात् मार्टिन ने एक अच्छे घर में विवाह किया। वह क्वेकर नामक एक धार्मिक सम्प्रदाय की लड़की थी। इस लड़की से जितनी सन्तानें उत्पन्न हुईं वे सबकी सब भलीमानस निकलीं। इसके भी पूर्व ई० सन् १८७४ में, न्यूयार्क जेल के निरीक्षक श्री डागडेल महोदय ने एक परिवार की परीक्षा की थी। इन्होंने देखा कि शहर के एक मुहल्ले में निम्न

श्रेणी के कुछ परिवार रहते हैं। उन परिवारों की उन्होंने अच्छी तरह खोज की। उन्हें पता चला कि १८ वीं शताब्दी में दो सगे भाइयों ने दो बदचलन लड़कियों से विवाह कर लिया था। इस परिवार का नाम 'ज्युक्स' परिवार था। इस परिवार में आपस में ही विवाह होते थे। इस कारण इस परिवार की और भी दुर्गति हुई। क्रमशः इस परिवार के व्यक्ति बाहर से भी विवाह करने लगे। ई० सन् १८१६ में ज्युक्स परिवार के सम्बन्ध में पुनः अनुसन्धान हुआ। इस अनुसन्धान के परिणाम में देखा गया कि ज्युक्स-परिवार में कुछ उन्नति हुई है।

'कल्लीकॉक' और 'ज्युक्स' परिवारों पर पारिपार्श्विक वातावरण का गहरा प्रभाव पड़ा था। ऐसा होना स्वाभाविक ही था। समाज में ऐसा ही हुआ करता है। हमारे समाज की प्रत्येक श्रेणी अपने-अपने वातावरण में ही काम-काज करती रहती है। कल्लीकॉक और ज्युक्स परिवारों में सैकड़ों व्यक्ति उत्पन्न हुए थे। वे सब के सब निकृष्ट प्रवृत्तिवाले थे। यह स्वाभाविक ही था कि उन परिवारों के व्यक्ति दुष्ट वातावरण में ही जीवन-यापन करेंगे। ऐसे दुष्ट वातावरण में कैसे किसी का स्वभाव सुधर सकता है?

सोलहवाँ परिच्छेद

स्टेरिलाइज़ेशन् किसे कहते हैं?

वंशानुक्रम-विज्ञान से कृषि-कार्य के सम्बन्ध में जितना लाभ हुआ है, उतना लाभ समाज-व्यवस्था में नहीं हुआ। पाश्चात्य देशों में केवल एक विषय पर कुछ ज़ोर दिया जाने लगा है। समाज में जो व्यक्ति रोगग्रस्त हैं, उन्हें सन्तान उत्पादन करने से रोका जा रहा है। एक ओर तो सन्तति-निरोध का ज्ञान फैलाया जा रहा है, दूसरी ओर स्टेरिलाइज़ेशन् द्वारा सन्तानोत्पादन की शक्ति को

नष्ट किया जा रहा है। स्टेरिलाइज़ेशन् से काम-वासना के उपभोग में कोई बाधा नहीं पड़ती। जिस नाली से पुरुष का वीर्य बाहर निकलता है, उस नाली को अस्त्रोपचार द्वारा काटकर उसके मुख को बाँध दिया जाता है। स्त्रियों में स्टेरिलाइज़ेशन् करना कुछ कठिन कार्य है। स्त्रियों के लिए नाभि के नीचे के भाग को चीरना पड़ता है, और तब जिन नालियों से अण्डाणु जरायु में आते हैं उन नालियों को काटकर उनके मुखों को बाँध दिया जाता है। इस प्रकार गर्भाधान तो बन्द हो जाता है, किन्तु कामोपभोग में कोई बाधा नहीं पड़ती।

आज से ४० वर्ष पूर्व अमेरिका के एक जेल के डाक्टर ने, इण्डियाना नामक शहर में, सर्वप्रथम स्टेरिलाइज़ेशन् का कार्य प्रारम्भ किया था। उन्होंने क़ैदियों की राय से उन्हें स्टेरिलाइज़ किया था। थोड़े ही दिनों के अन्दर मानसिक रोगग्रस्त व्यक्तियों को भी स्टेरिलाइज़ करना प्रारम्भ हो गया एवं सन् १९०७ ई० में केलीफ़ोर्निया एवं इण्डियाना प्रान्तों में स्टेरिलाइज़ेशन् के सम्बन्ध में नियम बन गये। आज-कल अमेरिका के २६ प्रान्तों में इस सम्बन्ध में क़ानून बन गये हैं। इस क़ानून के अनुसार वहाँ पर २७,००० व्यक्तियों को स्टेरिलाइज़ किया गया है। इनमें प्रतिशत ६० स्त्रियाँ हैं।

इसका प्रयोग ख़तरनाक है। जहाँ पर रोग प्रत्यक्ष है एवं जिनके रोगों से समाज को हानि पहुँच सकती है, उन रोगियों को तो स्टेरिलाइज़ करने से समाज का कल्याण है; अन्यथा यदि राज्य के अधिकारीगण मनमाने तौर से स्टेरिलाइज़ करना प्रारम्भ कर दें तो इसमें समाज की हानि है। अमेरिका के 'कानसास' प्रान्त में लड़कियों की एक संस्था से अधिकारीवर्ग असन्तुष्ट हो गये थे, और क्रोध में आकर उन्होंने उस संस्था की समस्त लड़कियों को 'स्टेरिलाइज़' कर दिया था। इस प्रक्रिया का दुरुपयोग होने की यथेष्ट आशङ्का है।

कौन रोग समाज के लिए हानिकारक है, और कौन नहीं, इसकी भी मीमांसा होना सहज बात नहीं है।

सत्रहवाँ परिच्छेद

वंशानुक्रम और समाज की उन्नति

सामाजिक उन्नति समाज के श्रेष्ठ पुरुषों पर जितनी निर्भर करती है, उतनी और किसी बात पर नहीं। यदि किसी समाज में श्रेष्ठ पुरुष कम होते जायँ, तो समाज की अवनति अवश्यम्भावी है। वर्त्तमान समय में यूरोप और अमेरिका में शिक्षित और अच्छे घरानों में सन्तानों की उत्पत्ति धीरे-धीरे कम होती जा रही है और जिन परिवारों में शिक्षा की उन्नति नहीं हो पाई है, जिन परिवारों को हम साधारणतया निम्न श्रेणी के समझते हैं, उनमें सन्तानों की संख्या धीरे-धीरे बढ़ती जा रही है। प्रसिद्ध अँगरेज़ जीववैज्ञानिक श्री जे० बी० एस० हॉल्डेन महोदय का मत है कि जिन समाजों में, साधारण परिवारों की अपेक्षा शिक्षित और उच्च घरानों में कम सन्तानें उत्पन्न होता हैं, वे समाज निश्चित रूप से अवनति की ओर झुकते हैं।

बहुतों की यह धारणा है कि समय के अनुसार समाज की जन-संख्या का बढ़ना एक स्वाभाविक बात है; किन्तु विचार करने पर यह बात सत्य नहीं मालूम पड़ती। यह बात सबको विदित है कि आधुनिक युग में संसार की जन-संख्या और विशेषकर इँगलैण्ड आदि की जन-संख्या में अद्भुत वृद्धि हुई है। किन्तु इस जन-संख्या की वृद्धि विगत शताब्दी में जिस रीति से हुई है, इसके पूर्व वैसी नहीं हुई थी। सन् १८०१ ई० से १८६१ तक साठ वर्ष में इँगलैण्ड की जन-संख्या दुगुनी से भी अधिक हो गई। किन्तु ई० सन् १०६६ की जन-संख्या के दुगुनी होने में क़रीब चार सौ साल लग गये थे। सन् १४१५ ई० में इँगलैण्ड की जन-संख्या १०६६ का जन-संख्या से दुगुनी हुई थी; किन्तु आज की स्थिति की परीक्षा करने पर ऐसा

प्रतीत होता है कि निकट भविष्य में इँगलैएड की जन-संख्या घट जायगी, बढ़ेगी नहीं। एक मत के अनुसार सन् २०३५ ई० तक इँगलैएड और वेल्स की जन-संख्या आज से एक दसवाँ भाग घट जायगी। अगले पृष्ठ में दिये हुए चित्र में विगत ६०० वर्षों की जन-संख्या की वृद्धि आदि का क्रम दिखाया गया है तथा अगले १०० साल में वह जन-संख्या कितनी गिर जायगी, इसका भी चित्र दिया गया है। इस बीच यदि उपयुक्त रीति से समाज का सुधार न किया गया, तो जन-संख्या की यह अवनति अवश्यम्भावी है। जैसे इँगलैएड की जन-संख्या की अवनति की आशङ्का की जा रही है, वैसे ही यूरोप और अमेरिका के युक्तराष्ट्र के विभिन्न प्रदेशों की अवस्था भी समान रूप से आशङ्कापूर्ण है।

यूरोप आदि देशों में निकट भविष्य में जन-संख्या द्रुत गति से कम हो जायगी, इस बात को सुनकर साधारण व्यक्ति कुछ आश्चर्य में पड़ जाता है। कारण, वह देखता है कि प्रति वर्ष जन-संख्या वृद्धि पा रही है, फिर निकट भविष्य में वह गिर कैसे जायगी! किन्तु विशेषज्ञों के इस अनुमान के मूल में जो कारण हैं, उनमें से कुछ कारणों का परिचय यहाँ दिया जाता है।

जन्म और मृत्यु के अनुपात की गणना इस प्रकार होती है— जन्म-अनुपात का अर्थ है, प्रति सहस्र व्यक्ति में कितने जन्म होते हैं। इसी प्रकार मृत्यु अनुपात का अर्थ है, प्रति सहस्र व्यक्तियों में प्रति वर्ष कितनी मृत्युएँ होती हैं। अब इन आँकड़ों पर ध्यान दीजिए। सन् १८९१ ई० में इँगलैएड और वेल्स के जन्म का अनुपात ३०·५ था और सन् १९२१ में यह १९·९ हो गया था। उन्हीं तीस वर्षों में इँगलैएड और वेल्स की जन-संख्या दो करोड़ नब्बे लाख से तीन करोड़ अस्सी लाख हो गई थी। इन आँकड़ों से यह जान पड़ता है कि एक ओर तो जन्म का अनुपात घट गया और दूसरी ओर जन-संख्या बढ़ गई। इसके अति-

रिक्त उसी समय इँगलैण्ड और वेल्स के बहुत से व्यक्ति विदेशों में भी चले गये थे। इस कारण भी जन्म की संख्या
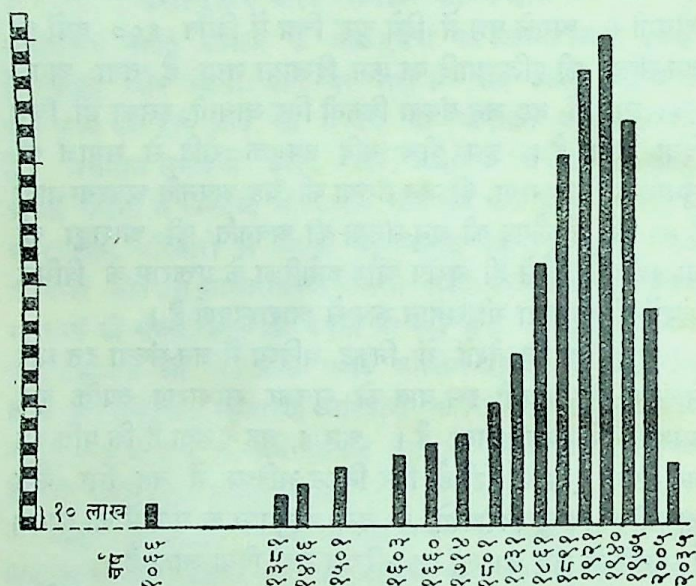
सन् १०६६ ईस्वी से लेकर २०३५ तक इँगलैण्ड और वेल्स की जन-संख्या में परिवर्तन का अनुमान।
(एच० सी० बिबी के ग्रन्थ से)

कुछ और घट गई होगी तथापि उन प्रदेशों की जन-संख्या बढ़ गई। इसका कारण यह है कि एक ओर जैसे जन्म-अनुपात घट गया, उसी प्रकार मृत्यु-अनुपात भी घट गया। किसी एक वर्ष में जन्म-अनुपात और मृत्यु-अनुपात के अन्तर से ही समाज की जन्म-संख्या में वृद्धि और कमी होती रहती है। वर्तमान समय में इँगलैण्ड में जन्म-अनुपात मृत्यु-अनुपात से अधिक है;

तथा विशेषज्ञगण क्यों यह अनुमान करते हैं कि निकट भविष्य में इँगलैण्ड की जन-संख्या घट जावेगी ?

इस बात में एक रहस्य है। यदि आज पूर्वापेक्षा लड़कियाँ समाज में कम हो जायँ तो अवश्य ही निकट भविष्य में सन्तान को देने के उपयुक्त स्त्रियाँ भी कम हो जायँगी, और इस प्रकार जन-संख्या भी घट जायगी। इस कारण केवल जन्म और मृत्यु के अनुपात से ही भविष्य में जन-संख्या घटेगी अथवा नहीं, यह कहना बहुत कठिन है। किसी समाज में जन-संख्या घट रही है अथवा बढ़ रही है, या वह संख्या समान रूप में स्थित है, यह जानने के लिए हमें यह जानना परम आवश्यक है कि वर्त्तमान समय में प्रति नारी के गर्भ में कितनी ऐसी लड़कियाँ जन्म ले रही हैं, जो कि भविष्य में माता होने के उपयुक्त होंगी।

यूरोप आदि देशों में जन्म-अनुपात के घट जाने का एक कारण तो यह है कि उन देशों में आजकल सन्तति-निरोध के साधनों का अधिक प्रयोग होने लगा है। दूसरा कारण यह है कि बहुत देशों में भ्रूण-हत्याएँ की जा रही हैं। इसके अतिरिक्त कुछ और भी कारण अवश्य होंगे, जिनसे उन देशों के मनुष्यों में वंश-वृद्धि की शक्ति भी कम होने लगी है; किन्तु जन्म-अनुपात के कम होने का सबसे बड़ा कारण तो इच्छापूर्वक जन्म-निरोध ही है। निम्नांकित चित्र में इस बात को दिखाया गया है कि शिक्षित समाज में, जिसमें जन्म-निरोध की रीतियों का ज्ञान अधिक फैला हुआ है, जन्म-अनुपात दूसरी अशिक्षित श्रेणियों से कम है। अशिक्षित श्रेणियों में जन्म-निरोध का ज्ञान अधिक नहीं फैला है। इसके अतिरिक्त पृष्ठ १५६ के चित्र से एक और बात पर भी ध्यान आकृष्ट होगा। वह यह कि कपड़े की मिलों में जो औरतें काम करती हैं, उनमें भी दूसरों की अपेक्षा जन्म-अनुपात कम है।

जर्मनी में विश्व-विद्यालयों के प्रोफ़ेसरों के प्रति घर में तीन से भी कम सन्तानें पाई जाती हैं; किन्तु उस देश में किसानों के प्रति

उच्च पेशेवाले

कारीगर

मज़दूर

खानों में काम करनेवाले मज़दूर

कपड़े की मिलों में काम करनेवाले मज़दूर

० ५० १०० १५० २००
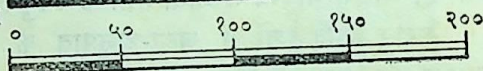
सन् १९२१ ईस्वी में प्रति सहस्र ५५ वर्ष से कम आयुवाले विवाहित मनुष्यों के नियमित जन्म-अनुपात का चित्र। यहाँ ५ पेशेवालों का चित्र दिया गया है। (एच० सी० बिबी के ग्रन्थ से लिया गया।)

घर में ६ से भी अधिक सन्तानें प्राप्त होती हैं। सोवियट रूस में बड़े-बड़े नेताओं के घरों में मामूली मज़दूरों के घरों से कम सन्तानें हैं। इन सब देशों के आँकड़ों की परीक्षा करने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि जिन श्रेणियों को हम आज उच्च श्रेणी समझते हैं, उन श्रेणियों में, निम्न श्रेणी की अपेक्षा कम सन्तानें उत्पन्न हो रही हैं। यूरोप और अमेरिका के केवल दो प्रदेश स्टॉकहाल्म और ब्रेज़ील में इसके विपरीत दृष्टान्त प्राप्त होते हैं। स्वीडेन की राजधानी स्टॉकहाल्म में जन्म-निरोध के सम्बन्ध में इतना प्रचार हुआ है और वहाँ सामाजिक और शिक्षा-सम्बन्धी इतने सुधार

हुए हैं कि वहाँ ग़रीब घरों में उच्च श्रेणी के घरवालों की अपेक्षा कम सन्तानें उत्पन्न हो रही हैं।

ब्रेज़ील के एक प्रान्त का नाम है मिनास जीराइस (Minas Geraes)। इस प्रान्त के प्रसिद्ध दैनिक पत्र में एक परिवार के विषय में बहुत ही मनोरंजक बात छपी थी। सेन्हॉर मोडेस्टो नामक व्यक्ति के ३३ वर्ष के विवाहित जीवन में ३३ सन्तानें उत्पन्न हुई थीं। उसका विवाहित जीवन २५ मई सन् १९३९ को ३३ साल ११ महीना और १३ दिन का था। उनकी सन्तानों में उन्नीस लड़के और चौदह लड़कियाँ थीं। इस संवाद के छपने पर मिनास जीराइस में बहुत चहल-पहल मची थी, किन्तु वहाँ पर अच्छे-अच्छे घरानों में साधारण तौर पर बारह से चौदह लड़के अक्सर जन्म लेते हैं। जॉन बी० ग्रिफिंग नामक एक पण्डित ने ब्रेज़ील और चीन की जन-संख्या के सम्बन्ध में खोज की है। इस सम्बन्ध में उनके दो लेख, एक चीन और दूसरा ब्रेज़ील के सम्बन्ध में सन् १९२६ और १९४० के 'जनरल ऑफ़ हेरे-डिटी' में छपे हैं। उनकी खोज का सारांश यह है—अमेरिका के युक्त राष्ट्र के उच्च श्रेणी के परिवारों की अपेक्षा ब्रेज़ील के उच्च श्रेणी के परिवारों में अधिक सन्तानें उत्पन्न हो रही हैं। वहाँ के ग़रीब घरों में उच्च श्रेणी के घरों की अपेक्षा कम सन्तानें जीवित रहती हैं। चीन में भी यही बात पाई गई है। वहाँ भी उच्च श्रेणी के घरों में निम्न श्रेणी की अपेक्षा अधिक सन्तानें जन्म लेती हैं ज़िन्दा रहती हैं। अर्थात् चीन और ब्रेज़ील में निम्न श्रेणी की अपेक्षा उच्च श्रेणी में जन्म-संख्या दिन ब दिन बढ़ती जा रही रही है। कहा जाता है कि संसार भर में चीन की ही स्त्रियों के सबसे अधिक सन्तानें उत्पन्न होती हैं; किन्तु ग्रिफिंग साहब की खोज से यह ज्ञात हुआ है कि ब्रेज़ील की माताएँ ही सबसे अधिक सन्तानों को जन्म देती हैं। ब्रेज़ील की जनसंख्या भी दिन ब

दिन ख़ूब बढ़ रही है। सन् १९०० ई० में ब्रेज़ील की जन-संख्या एक करोड़ सत्तर लाख थी। सन् १९२० में यह संख्या तीन करोड़ तक पहुँच गई और १९४० में चार करोड़ अस्सी लाख हो गई है। ग्रिफिंग के अनुसार, अमेरिका के युक्त राष्ट्र में, उच्च श्रेणी के परिवारों में, दिन ब दिन कम सन्तानें उत्पन्न होने लगी हैं। किन्तु निम्न श्रेणी के परिवारों में, उच्च श्रेणी की अपेक्षा डेढ़ गुने से भी अधिक सन्तानें उत्पन्न हो रही हैं।

अमेरिका के युक्त-राष्ट्र में जन्म-अनुपात पिछले दस वर्षों में प्रतिशत २५ के अनुपात से गिर गया है। पिछले पाँच वर्षों के अन्दर सन् १९३९ ई० में, अमेरिका के युक्त-राष्ट्र में दस तथा दस से कम उम्र के बच्चों की संख्या सोलह लाख कम हो गई है। अमेरिका के गृह-युद्ध के बाद वहाँ की प्रत्येक स्त्री प्राय: आठ सन्तानों की माता होती थी और आज वह दो सन्तानों से अधिक की माता नहीं हो रही है। विशेषज्ञों का कहना है कि किसी समाज की जन-संख्या ज्यों की त्यों रखने के लिए एक दम्पती के कम से कम तीन सन्तानों का होना आवश्यक है। किन्तु अमेरिका के दम्पती आज तीन से भी कम सन्तानों के जन्मदाता हैं। पहले तो अमेरिका के युक्त-राष्ट्र के बड़े-बड़े शहरों में ही जन-संख्या कम होने लगी थी, परन्तु अब ग्रामों में भी यह संख्या कम होने लगी है। गाँवों में भी यह देखा गया है कि शिक्षित और धनी परिवारों में ही जन्म-संख्या कम हो रही है। यह देखने में आ रहा है कि शिक्षा के साथ-साथ जन्म-अनुपात भी घट रहा है। पिछले अस्सी वर्षों से यह देखा जा रहा है कि ग्रैजुएटों के परिवारों में, उन लोगों की अपेक्षा जिन्होंने कॉलेज की शिक्षा नहीं प्राप्त की है, कम सन्तानें उत्पन्न हो रही हैं। इसका एक कारण तो यह है कि बहुत सी कॉलेज की शिक्षा-प्राप्त लड़कियाँ शादी ही नहीं करतीं, दूसरी बात यह है

कि शिक्षित व्यक्ति, पुरुष और स्त्री दोनों ही जान बूझकर वंश-निरोध करके, अपनी सन्तानों की संख्या कम कर रहे हैं। ऐसा देखा गया है कि अमेरिका के बड़े-बड़े गवैये और अच्छे-अच्छे वाद्य-यन्त्रों के बजानेवाले छत्तीस परिवारों में ३७ लड़के उत्पन्न हुए हैं। वहाँ के सौ विवाहित पुस्तक-लेखकों के केवल डेढ़ सौ सन्तानें उत्पन्न हुई हैं। इनमें ग्यारह लेखिकाएँ भी हैं, जिनके कुल मिलाकर १२ सन्तानें हैं।

इसके कारण ये हैं कि शिक्षित-जन, अधिक सन्तान के जनक-जननी नहीं होना चाहते हैं, इससे एक ओर वे जन्म-निरोध कर रहे हैं और दूसरी ओर स्त्रियाँ बहुत संख्या में गर्भ गिरा देती हैं।

डा० फ्रेडेरिक टॉसिग ने अमेरिका के गर्भपात के सम्बन्ध में बहुत खोज का है। उनका कहना है कि अमेरिका के युक्तराष्ट्र में प्रति वर्ष सात लाख नारियाँ गर्भ गिराया करती हैं। इसका यह अर्थ होता है कि तीन गर्भवती नारियों में से एक नारी गर्भ गिरा दिया करती है। इनमें से प्रतिशत २५ या ३० नारियाँ रोग के कारण गर्भ गिराती हैं। यूरोप और अमेरिका में रोग के कारण गर्भ का गिराना ग़ैरक़ानूनी नहीं है। प्रतिशत ६० से ६५ नारियाँ गुप्त रीति से गर्भ गिराया करती हैं। इसमें आधे गर्भ तो डाक्टरों की सहायता से गिराये जाते हैं, और आधे योंही अनाड़ियों के हाथ गिराये जाते हैं। गुप्त रीति से गर्भ गिराये जाने के कारण अमेरिका में प्रति वर्ष आठ हज़ार नारियों की मृत्यु होती है। डा० टॉसिग के कथनानुसार प्रति नब्बे गर्भपात विवाहित स्त्रियाँ ही कराती हैं, जिनकी आयु २५ से ३५ तक की होती है। देहात की अपेक्षा शहरों में दूने गर्भपात हुआ करते हैं। गत महायुद्ध के बाद "वेनिस" नगरी में गुप्त रूप से गर्भ गिराने की संख्या युद्ध के पहले से ५ गुनी बढ़ गई है। न्यूयार्क सिटी में प्रति वर्ष ८० हज़ार नारियाँ गुप्त रूप से गर्भपात कराती हैं। सन १९१९ ई० की गणना

से यह मालूम हुआ था कि यूनाइटेड स्टेट्स आफ़ अमेरिका में प्रति वर्ष गुप्त रीति से १०,००,००० नारियाँ गर्भपात कराती हैं।*

साधारणतया जिन शिक्षित परिवारों की आमदनी कम है, उनमें ही कम सन्तानें जन्म लेती हैं। यदि राष्ट्र की ओर से बच्चों के पालन-पोषण के लिए उन परिवारों को सहायता मिले, तो जन्म की संख्या में वृद्धि हो सकती है।

सन् १९३९ ई० में न्यूयार्क सिटी में क़रीब तीस हज़ार नारियाँ अध्यापन का काम करती थीं। उनमें प्रतिशत चालीस से पैंतालीस नारियाँ अविवाहिता थीं। कुछ दिन पहले तक उस प्रदेश के क़ानून के अनुसार अध्यापिकाओं के लिए विवाह करना मना था, किन्तु अब इस क़ानून में परिवर्त्तन हो गया है। जिस समय अध्यापिकाओं के लिए विवाह करना मना था, उस समय अध्यापिकाओं को छः सौ से लेकर बारह सौ डालर तक मासिक वेतन मिलता था। धीरे-धीरे यह वेतन १, ६०८ डालर से लेकर ३,३३९ डालर तक हो गया है। कुछ उन्नत श्रेणी की अध्यापिकाओं के लिए यह वेतन और भी अधिक हो गया है।

समाज की जन-संख्या के बढ़ाने के विषय में विभिन्न राष्ट्रों की अलग-अलग नीतियाँ हैं। जर्मनी, इटली और रूस राष्ट्र में जन-संख्या के बढ़ाने की नीति बढ़ती जा रही है। सोवियट रूस में जन-संख्या खूब बढ़ रही है। सम्भवत: इसका एक कारण यह है कि वहाँ पर स्त्रियों के लिए बहुत-सी आर्थिक सुविधाएँ हैं। वहाँ पर स्त्रियों को माता बनने में अधिक दिक्कतें नहीं उठानी पड़तीं।

——

* देखिए—Bankruptcy of Marriage-by V. F. Calverton P. 185, 187.

अठारहवाँ परिच्छेद

वंशानुक्रम-विज्ञान और समाज व्यवस्था

प्रसिद्ध जर्मन पण्डित स्पेंगलर महोदय ने कहा है कि जातीय सभ्यताओं की भी उत्पत्ति, विकास, कौमारावस्था, यौवन, जरा और मृत्यु आदि व्यक्तियों की तरह होती हैं। भारतीयों के धारणानुसार जातियों की मृत्यु अनिवार्य नहीं है। व्यक्तियों के सम्बन्ध में जैसे जन्म, मृत्यु, कौमार और यौवनावस्था होती हैं और फिर उसका जन्म एवं उसकी वृद्धि होती रहती है, वैसे ही जाति की भी चक्रवत् उन्नति, अवनति, जन्म, विकास, कौमार, यौवन एवं जरावस्थाएँ होती रहती हैं। यह बात भी सत्य है कि जिसका जन्म होता है, उसकी मृत्यु भी होती है। किन्तु राष्ट्रीय उत्थान और पतन के बारे में भारतीयों की धारणा यह है कि राष्ट्रीय जीवन में इन उत्थान-पतनों के युग हुआ करते हैं। अर्थात् जातीय जीवन में परिवर्त्तन चक्रवत् हुआ करते हैं। आधुनिक वैज्ञानिकों में बहुतेरे विद्वान् भारतीय मत के अनुयायी बनते जा रहे हैं। जर्मनी के तीन प्रसिद्ध जीव-वैज्ञानिकों ने मिलकर वंशानुक्रम-विज्ञान पर एक प्रामाणिक ग्रन्थ लिखा है। उस ग्रन्थ का नाम है ह्युमन हेरेडिटी (Human Heredity)। अँगरेज़ी भाषा में इस ग्रन्थ से बढ़कर मानव-समाज से सम्बन्ध रखनेवाला वंशानुक्रम-विज्ञान पर दूसरा कोई ग्रन्थ नहीं है। उन तीन सर्वमान्य पण्डितों के नाम हैं, डाक्टर अरवीन् वावर, डाक्टर अयेजिन्न फ़िशर एवं डाक्टर फ़्रिट्ज़ लेंज़। उक्त पण्डितों का कहना है कि अनियन्त्रित विवाह-प्रथा के कारण एवं समाज की उच्च श्रेणियों में, निम्न श्रेणी की अपेक्षा, वंशवृद्धि कम होने के कारण आधुनिक सभ्य समाजों की अधोगति प्रारम्भ हो गई है। आधुनिक पाश्चात्य समाज के बड़े-बड़े शिक्षित व्यक्तियों में भी यह धारणा बैठ गई है कि विवाह एक व्यक्तिगत व्यापार है। आधुनिक रूस में एवं

चार्ट्रीएड रसेल, वी० एफ० कैलवार्टन, स्मालहाउसेन आदि पण्डितों की राय में विवाह-बन्धन का अब कोई प्रयोजन नहीं समझा जाता है। अपने को प्रगतिशील कहनेवाले व्यक्ति आर्थिक एवं अन्यान्य राष्ट्रीय व्यापार में तो समाज का नियन्त्रण परम आवश्यक समझते हैं, किन्तु विवाह के सम्बन्ध में वे कैसे अनायास ही निश्चिन्त होकर उदासीन रहते हैं। आधुनिक वंशानुक्रम-विज्ञान के साथ मानों समाज-व्यवस्था का कोई सम्बन्ध ही नहीं है।

प्रकृति में स्वाभाविक रीति तो यह है कि दुर्बल जीव जीवन-संग्राम में टिक नहीं पाते। उन्हें साथी नहीं मिल पाता। इस प्रकार प्राकृतिक निर्वाचन के परिणाम में दुर्बलों और पीड़ितों का लोप होता जाता है; एवं स्वास्थ्यवान्, कर्मठ व अन्य प्रकार से योग्य प्राणियों की वंशधारा बनी रहती है। किन्तु मानव-समाज में ऐसा नहीं हो पाता। गृहपालित पशुओं में भी हम अपनी अभिरुचि के अनुसार अच्छे प्राणियों को चुन लेते हैं और उन्हीं के वंश की वृद्धि होने देते हैं। इस प्रकार निर्वाचन के परिणाम में हम विशेष-विशेष श्रेणियों की वंशधारा को क़ायम रख सकते हैं, अवाञ्छित प्राणियों की वंशवृद्धि को रोककर प्राणियों का श्रेणि-विभाजन अपनी इच्छा के अनुसार कर सकते हैं। यदि 'म्युटेशन' के कारण किसी वंश में रोगग्रस्त अथवा अन्य किसी प्रकार के अवाञ्छित जीव की उत्पत्ति होती है तो उसकी वंशवृद्धि को हम रोक सकते हैं।

किन्तु आधुनिक मनुष्य-समाज में किसी प्रकार का नियन्त्रण नहीं है। अनियन्त्रित विवाह के फलस्वरूप, मनुष्य-समाज में नाना प्रकार के जेनि के अनियमित सम्मिश्रण से वाञ्छनीय एवं अवाञ्छनीय स्वभाव-विशिष्ट नाना प्रकार के मनुष्यों के जन्म होते रहते हैं। इसके उपरान्त समाज के श्रेष्ठ व्यक्तियों की सन्तानें निम्न श्रेणी के व्यक्तियों की अपेक्षा कम होने लगी हैं। इस कारण समाज में जो परिस्थिति उत्पन्न होने लगी है, वह समाज के

लिए कल्याणकारी नहीं है। गृह-पालित कुत्तों की हम अच्छी से अच्छी नस्लें बना रहे हैं, किन्तु मानव-वंश के लिए हम उदासीन रहते हैं। यदि किसी आदर्श के अनुसार मानव-समाज में भी विशेष-विशेष श्रेणियों की उत्पत्ति की चेष्टा की जाय तो जातीय उन्नति का मार्ग अत्यन्त प्रशस्त हो जाय।

जीव-विज्ञान और वंशानुक्रम-विज्ञान के अनुसार वंशोन्नति के प्रति ध्यान रखने से बीज-कोष के अमरत्व की तरह जाति भी सदा प्राणवन्त बनी रह सकती है। सभ्यताओं का विकास समाज के श्रेष्ठ पुरुषों द्वारा ही हुआ है। वंशानुक्रम-विज्ञान के आधार पर समाज की व्यवस्था करने पर समाज में श्रेष्ठ पुरुषों के जन्म-क्रम और उनकी संख्याओं का अपने इच्छानुसार नियन्त्रण करना सम्भव है। आज संसार के प्रत्येक समाज में उच्च श्रेणी के विद्वान्, चरित्रवान् और मेधावी पुरुषों की सन्तानें, साधारण व्यक्ति एवं विशेष कर निम्न श्रेणियों की सन्तानों की अपेक्षा बहुत कम होने लगी हैं। जातीय अवनति का यह एक प्रबल लक्षण है। आधुनिक विज्ञान के अनुसार यह बात माननी पड़ेगी कि वंशानुक्रम से प्राप्त अच्छे-बुरे संस्कारों के कारण प्रत्येक समाज के व्यक्तियों में बहुत विभिन्नताएँ हैं। इन विभिन्नताओं के आधार पर समाज-व्यवस्था होनी चाहिए और यह भी देखना उचित है कि समाज में अच्छे संस्कारवाले व्यक्ति अधिक से अधिक उत्पन्न हों।

यह देखा गया है कि उन्नत पुरुषों के मस्तिष्क दूसरे पुरुषों से अधिक भारी होते हैं। यूरोप, चीन, जापान आदि सभ्य देशों के औसत दर्जे के व्यक्ति का मस्तिष्क निग्रो तथा आस्ट्रेलिया के असभ्य मनुष्यों की अपेक्षा कहीं अधिक भारी होता है। किसा एक जाति में भी उच्च कोटि के विद्वान् एवं बुद्धिमान् व्यक्तियों के मस्तिष्क, अन्य साधारण व्यक्ति के मस्तिष्क की अपेक्षा अधिक भारी होते हैं। इसमें भी कोई सन्देह नहीं कि बुद्धि एवं विचार-

शक्ति हम वंश-परम्परा से प्राप्त करते हैं। जीवन में उपयुक्त अवसर एवं अवकाश पाने पर उक्त प्रवृत्तियाँ पनपती हैं।

वंशानुक्रम के नियमानुसार, विवाह-पद्धति के नियन्त्रण से, अच्छे संस्कार-युक्त व्यक्तियों का अधिक से अधिक संख्या में जन्म देना सम्भव है। ऐसा न करने से समाज में अच्छे पुरुषों की संख्या धीरे-धीरे कम हो जायगी और इस प्रकार समाज का पतन अवश्यम्भावी हो जायगा।

पाश्चात्य देशों में सबसे पहले सन् १९२२ ई० में स्वीडेन में वंशानुक्रम-विज्ञान के आधार पर जातीय उन्नति की व्यवस्था करने के लिए एक संस्था क़ायम हुई थी। प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक विलियम मैक्डुगल महोदय ने, १९२९ ई० में जापान सम्राट् के पास एक पत्र भेजा था, जिसमें उन्होंने अत्यन्त आग्रह के साथ मर्म-स्पर्शी भाषा में वंश-विज्ञान के आधार पर कुछ प्रस्ताव भेजे थे। जापान में भी वंश-विज्ञान के आधार पर समाज-व्यवस्था के सम्बन्ध में वैज्ञानिकों की एक समिति बनी है, जिसका नाम है, ग्रैण्ड युजेनिक कौंसिल। पाश्चात्य देशों के बहुत से राष्ट्रों में विवाह पर नियन्त्रण करने के लिए नियम बन रहे हैं। रोगी व्यक्तियों को विवाह करने से रोकने की चेष्टा हो रही है। हिन्दुओं की वर्णव्यवस्था की ओर पाश्चात्य देशों के बड़े-बड़े पण्डितों तथा वैज्ञानिकों का ध्यान आकृष्ट होने लगा है। प्रसिद्ध वैज्ञानिक श्री जे० वी० एस० हॉलडेन महोदय ने तो यह कहने का साहस किया है कि अगले दो सौ वर्ष के अन्दर यूरोप में भी हिन्दुओं की तरह वर्ण-व्यवस्था स्थापित हो जायगी। वंशानुक्रम-विज्ञान के आधार पर समाज-व्यवस्था के सम्बन्ध में इस विज्ञान की एक नवीन शाखा उत्पन्न हुई है। इसका अँगरेज़ी नाम 'यूजेनिक्स' है। समाज-व्यवस्था पर इस विज्ञान का कैसा प्रभाव पड़ सकता है, इसका पूर्ण परिचय यूजेनिक्स शास्त्र में प्राप्त हो सकता है। यह

नवीन शास्त्र अभी बन ही रहा है। मानव-जीवन का आदर्श क्या होना उचित है, इसका निर्णय हुए बिना समाजशास्त्र का निर्माण होना व्यर्थ है। वैज्ञानिकगण आज इस बात को स्वीकार करने लगे हैं कि बुद्धिवृत्ति की अपेक्षा मानव-जीवन पर हृदय-वृत्ति का बहुत अधिक प्रभाव है। बुद्धिमान् होने से ही मानव का कल्याण सम्भव नहीं; मानव को अच्छा भी होना पड़ेगा। .फ़ुरसत के समय मनुष्य किस प्रकार जीवन बितायेगा, उसके आमोद-प्रमोद किस ढङ्ग के होंगे, किस रीति से शिक्षा पाने पर उसका जीवन सार्थक होगा, इन सब बातों का निर्णय कौन करेगा और कैसे होगा? समाज से आर्थिक विषमता को दूर करना एक बड़ा भारी कार्य है, इसमें कोई सन्देह नहीं; किन्तु केवल आर्थिक विषमता के दूर होने से ही मनुष्य अच्छे होने लगेंगे इसका क्या निश्चय है? संसार भर का दरिद्र शोषित-वर्ग यही कल्पना कर रहा है कि कैसे वह भी संसार के पैसेवाले व्यक्तियों की तरह हो सकेगा। संसार के पैसेवाले व्यक्ति का ही आदर्श उसका आदर्श हो रहा है। किन्तु यथार्थ दृष्टि से संसार के पैसे-वाले व्यक्तियों के जीवन तो उद्देश्य-हीन ही होते हैं। आज मानव के लिए एक नवीन सामाजिक और वैयक्तिक आदर्श की नितान्त आवश्यकता है। इस नवीन, दार्शनिक भावनाओं से उद्भासित, मानव-कल्याण की कामना से अनुप्राणित वैयक्तिक और सामा-जिक आदर्श के सहारे वंशानुक्रम-विज्ञान के आधार पर नवीन रूप से समाज-व्यवस्था की आवश्यकता है। धर्मशास्त्र से ही जीवन का आदर्श बनेगा और वंशानुक्रम-विज्ञान के आधार पर ही नवीन समाज की व्यवस्था होगी।

——

वंशानुक्रम के सम्बन्ध में प्रमाण-पुस्तकों की सूची :—

1. Human Heredity by Erwin Baur, Engen Fischer and Fritzdewz Translated by Eden and Cedar Paul 1931 George Allen and Unwinded London.
2. You and Heredity—by Amram Sheinfeld—1939.
3. An Introduction to the Study of Heredity—E. W. Macbride—1931.
4. The Study of Heredity by E. B. Ford—1938.
5. Heredity, Engenics and Social Progress by H. C. Bibby—1939.
6. Geneties by H. E. Walter—1923.
7. Hereditary Genius by Francis Galton—
8. Science for the Citizen by Lancelot Hoghen—
9. An Outline of Modern knowledge—
10. Nature and Nature—L. Hoghen—1933.
11. Essays in Popular Science—J. S. Huxley.
12. Essays of a Biolegist—J. S. Huxley.
13. Evolution : The Modern Synthesis—J. S. Huxley 1938.
14. The Causes of Evolution—J. B. S. Haldane—1932.
15. Evolution and Genetics—T. H. Morgan—1928.
16. Journal of Heredity—American *Genetic Association, Washington.*
17. Crime as Destiny—J. Lange—1931 Eng. trans.
18. The Trend of the Race—S. J. Holmes—1921 New York.
19. Religion and the Sciences of Life.
20. Heredity by J. A. Thomson.

———

वंशानुक्रम के सम्बन्ध में प्रमाण-पुस्तकों की सूची :—

1. Human Heredity by Erwin Baur, Engen Fischer and Fritzdewz Translated by Eden and Cedar Paul 1931 George Allen and Unwinded London.
2. You and Heredity—by Amram Sheinfeld—1939.
3. An Introduction to the Study of Heredity—E. W. Macbride—1931.
4. The Study of Heredity by E. B. Ford—1938.
5. Heredity, Engenics and Social Progress by H. C. Bibby—1939.
6. Geneties by H. E. Walter—1923.
7. Hereditary Genius by Francis Galton—
8. Science for the Citizen by Lancelot Hoghen—
9. An Outline of Modern knowledge—
10. Nature and Nature—L. Hoghen—1933.
11. Essays in Popular Science—J. S. Huxley.
12. Essays of a Biologist—J. S. Huxley.
13. Evolution : The Modern Synthesis—J. S. Huxley 1938.
14. The Causes of Evolution—J. B. S. Haldane—1932.
15. Evolution and Genetics—T. H. Morgan—1928.
16. Journal of Heredity—American *Genetic Association, Washington.*
17. Crime as Destiny—J. Lange—1931 Eng. trans.
18. The Trend of the Race—S. J. Holmes—1921 New York.
19. Religion and the Sciences of Life.
20. Heredity by J. A. Thomson.

——